UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180418

UNIVERSAL
LIBRARY

दुर्गादास

(विद्यार्थी-संस्करण)

पंजाब विश्वविद्यालयकी 'हिन्दी-रत्न' परीक्षाके लिए स्वीकृत।

दुर्गादास

(विद्यार्थी संस्करण)

मूल लेखक

स्वर्गीय नाट्याचार्य द्विजेन्द्रलाल राय

मूल नाटकके अनुवादकर्ता—

पं० रूपनारायण पाण्डेय

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय

जनवरी, १९३४

मूल्य १।), रुपया

प्रकाशक,

नाथूराम प्रेमी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई

मुद्रक,

रघुनाथ दिपाजी देसाई,

न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,

केळेवाडी गिरगांव, बम्बई नं० ४

वक्तव्य

इतिहासकार टॉडका यह कथन बिल्कुल सही है कि राजपूतानेका इतिहास सैकड़ों थर्मापॉलियोंका इतिहास है। आज हम लोग उन राजपूतोंकी वीरताभारी कहानियाँ पढ़ते हैं, तो वे अविश्वसनीय कल्पनाएँ-सी ही प्रतीत होने लगती हैं। जिस जातिमें जौहरकी-सी संस्थाएँ मौजूद थीं, उससे बढ़कर वीर जाति इस विश्वमें दूसरी नहीं हो सकती (कितना विस्मयोत्पादक दृश्य होता होगा—सैकड़ों युवतियाँ और वृद्धाएँ अपने दूध-पीते बच्चोंके साथ खुशी-खुशी आगमें कूद जाती थीं और जवान तथा बूढ़े केसरिया बाना पहिनकर जानपर खेल जाते थे। जत्थेके जत्थे गाँवके गाँव और राज्यके राज्य बिल्कुल मटियामेट हो जाते थे, मगर मर्यादा नहीं मिटने देते थे। आज हम उनके तराकोंको भयंकर कह सकते हैं, उनकी दृष्टिको संकुचित और उनके आदर्शोंको मूर्खतापूर्ण कह सकते हैं; मगर उनकी भावनाके सामने हमारा सिर खुद-बखुद झुक जाता है। कौन जनता है कि भावी संतति हमारी कितनी ही बातोंकी हँसी नहीं उड़ाएगी। ज़मानेके साथ साथ विचार और आदर्श तो बदलते जाते हैं; मगर वीरताकी भावना उन आधारभूत तत्त्वोंमेंसे है, जो मनुष्यको देवत्वकी ओर ले जाती हैं और समाजको सुख तथा समृद्धिकी ओर।

दुर्गादास जी राजपूती वीरताका एक सर्वश्रेष्ठ नमूना है। कविवर
उसके चरित्र-चित्रणको और भी चमकाकर उसे पूर्ण तथा
दिया है। अनेक अलोचकोंकी रायमें द्विजेन्द्रलालका यह
ऐसा व्यक्ति बन गया है कि मनुष्यके लिए उतना ऊँचा बन

सकना संभव ही नहीं है। जो कुछ भी हो; इस बातसे इतना तो स्पष्ट है कि भारतवर्षकी आगामी सन्तति इस मर्यादा-पुरुषोत्तम दुर्गादासको अपना आदर्श पुरुष बना सकती है। ऐसे वीर पुरुषका चरित्र देशके भावी नागरिकोंके सामने रखना भी हमारी रायमें एक पुण्य कार्य है। इसी भावनासे प्रेरित होकर आज हम 'दुर्गादास' का यह 'विद्यार्थी-संस्करण' प्रकाशित कर रहे हैं। मूल नाटकमेंसे हमने वे स्थल निकाल दिये हैं, जिनका आना विद्यार्थियोंके सामने उचित नहीं था। तथापि हमने इस बातका पूर्ण प्रयत्न किया है कि नाटकमें किसी प्रकारकी कमी न आने पावे।

एक बात और भी। कविवर द्विजेन्द्रका यह नाटक राजपूती इतिहासका एक अध्याय है; तथापि उस महान् लेखकने अपनी इस रचनामें ऐसे भावोंको पोषित किया है, जो भारतीय मात्रके हृदयमें हिन्दू-मुस्लिम एकताके बीज बोनेवाले हैं। हमें आशा है कि हिन्दी जनता हमारे इस प्रयत्नका आदर करेगी।

—प्रकाशक

नाटकके प्रधान पात्र

नट

औरंगज़ेब	... ...	भारत-सम्राट्
राजसिंह	... ...	मेवाड़के राणा
श्यामसिंह	... ...	बीकानेरके राजा
संभाजी	... ...	मराठोंके राजा
दुर्गादास	... ...	मारवाड़के सेनापति
दिलेरखाँ	... ...	मुग़ल-सेनापति
तहव्वरखाँ	... ...	मुग़ल-सेनापति
अकबर	... ...	औरंगज़ेबके चारों लड़के
मोअज़्ज़म	... ...	औरंगज़ेबके चारों लड़के
आज़म	... ...	औरंगज़ेबके चारों लड़के
कामबख्श	... ...	औरंगज़ेबके चारों लड़के
भीमसिंह	... ...	राणा राजसिंहके लड़के
जयसिंह	... ...	राणा राजसिंहके लड़के
समरदास	... ...	दुर्गादासका भाई
अजितसिंह	... ...	जसवन्तसिंहका लड़का
कासिम	... ...	एक मुसलमान

नटी

गुलनार (काश्मीरी बेगम)	...	औरंगज़ेबकी बेगम
महामाया	... ...	जसवन्तसिंहकी रानी
कमला	... ...	जयसिंहकी रानियाँ
सरस्वती	... ...	जयसिंहकी रानियाँ
राजिया	... ...	अकबरकी लड़की

दुर्गादास

पहला अंक

पहला दृश्य

स्थान—दिल्लीके महलमें सम्राट् औरंगजेबका सभा-भवन

समय—सबेरे आठ बजे

[सिंहासनपर बादशाह औरंगजेब बैठे हुए हैं। उनके बाईं ओर बीकानेरके राजा श्यामसिंह बैठे हैं। दाहिनी ओर तहव्वरखाँ और दो सिपाही एकाग्र भावसे नीची निगाह किये खड़े हैं। सामने राठौर-सेनापति दुर्गादास और उनके भाई समरदास खड़े हैं।]

औरंगजेब—दुर्गादास, जसवन्तसिंहकी मौतको मुगल बादशाहतकी बदनसीबी समझना चाहिए।

दुर्गादास—जहाँपनाह, साम्राज्यकी भलाईके लिए—राजाकी आज्ञाका पालन करनेके लिए—मरनेमें हर एक प्रजाका गौरव है।

औरंगज़ेब—तुमने ठीक कहा दुर्गादास, जसवन्तसिंहके सिवा ी काबुलियोंको और कौन काबूमें ला सकता था? उनका मुझपर ान है—इस ज़िन्दगीमें मैं उस एहसानका बदल नहीं सकता—(श्यामसिंहसे) क्यों न राजासाहब?

श्याम०—बेशक।

समरदास—क्यों ? जहाँपनाहने तो जसवन्तसिंहके लड़के पृथ्वीसिंहकी जान लेकर उसका बदला चुका दिया !

औरंग०—मैंने उसकी जान ली ? ऐ जवान, तुमको होश नहीं कि तुम किसे यह तोहमत लगा रहे हो ? मैंने उसकी जान ली ? मैं पृथ्वीसिंहको अपने लड़केकी तरह चाहता था। मैंने उसे अपने हाथसे खिलअतकी पोशाक पहनाई थी।

समर०—सम्राट्, उस अबोध बालकने भी यही समझा था। बेचारा सरल बालक नहीं जानता था कि वह पोशाक जहारीली है।

श्याम०—समरदास, तुमको कुछ होश है कि तुम किससे बातें कर रहे हो ?

समर०—जानता हूँ राजा साहब, आपके प्रभुके साथ—अपने प्रभुके साथ नहीं।

(औरंगजेब कुछ चौंक पड़े। अपने मुँहपर इस प्रकार अपना कलंक सुननेका उनको अभ्यास न था। उनकी भौंहोंमें बल पड़ गये। लेकिन तत्काल ही उन्होंने अपनेको सँभाल लिया।)

औरंग०—कौन कहता है कि वह पोशाक जहरीली थी ?

दुर्गा०—नहीं जहाँपनाह, इसका कोई प्रमाण नहीं है। यह सर्वसाधारणका अनुमानमात्र है कि वह पोशाक जहरीली थी।

समर०—(क्रोधके साथ) अनुमान ? पोशाक पहननेके कुछ ही समय बाद विषके वेगसे तड़प-तड़पकर बेचारा मर गया। मैंने क्या कुँअर पृथ्वीसिंहकी मौत देखी नहीं ?—अनुमान ? तो जसवन्तसिंहको अफगानिस्तान भेजकर उनकी हत्या कराना भी अनुमान है ? और आज उनकी रानी और छोटे कुँअरको दिल्लीमें रोक रखना

भी अनुमान है ? फिर तो तुम अनुमान हो; मैं अनुमान हूँ; सम्राट् औरंगज़ेब अनुमान हैं; मुगल-साम्राज्य अनुमान है; यह सारा विश्व अनुमान है ! यह अनुमान नहीं है दुर्गादास,—यह ध्रुव, स्थूल, प्रत्यक्ष है।

दुर्गा०—क्रोधको शान्त करो भैया,—याद करो क्या प्रतिज्ञा करके आये थे।

समर०—अच्छा, मैं चुप हूँ।—(बादशाहसे) किन्तु एक बात कहे रखता हूँ जनाब, यह न समझिएगा कि हम लोग बिलकुल दूध पीते बच्चे हैं, कुछ नहीं समझते ! कुछ कुछ समझते हैं।

दुर्गा०—राजाधिराज, मेरे भाईका स्वभाव ही कुछ कड़ा है—माफ कीजिए।—जहाँपनाह, हम लोग आज बादशाहकी सेवामें एक विनीत प्रार्थना करने आये हैं।

औरंग०—अच्छी बात है, कहो।

श्याम०—कहो दुर्गादास, भय क्या है। सम्राट् उदार हैं। उन्होंने तुम्हारे बदमिजाज भाईको माफ कर दिया है। तुम्हारे लिए भयका कोई कारण नहीं है।

दुर्गा०—हम लोगोंका विनीत निवेदन यही है कि जोधपुरकी महारानी—जसवन्तसिंहकी विधवा—बच्चेको लेकर, अपने राज्यको लौट जाना चाहती हैं। इसी बारेमें मैं सम्राटकी आज्ञा माँगता हूँ।

औरंग०—इसमें मेरी इजाजतकी क्या जरूरत है ?

दुर्गा०—जहाँपनाहकी इजाजतकी क्या जरूरत है, सो तो मैं भी नहीं जानता। किन्तु मुगल-सेनापति तहव्वरखाँ हुजूरकी आज्ञाके बिना महारानीको यहाँसे जाने देना नहीं चाहते।

औरंग०—(तहव्वरखाँकी ओर देखकर) किस लिए तहव्वरखाँ ?

तहव्वरखाँ०—जहाँपनाहका ऐसा ही हुक्म मैं समझा था।

औरंग०—वह—हाँ, मैंने कहा था कि जसवन्तसिंहकी रानीको मैं दिल्लीसे जानेसे पहले खुश करना चाहता हूँ। जो मेहरबानी दिखानेमें मैंने जसवन्तसिंहके साथ कुछ उठा नहीं रक्खा, उस मेहरबानीसे उनकी रानीको भी मैं महरूम नहीं रखना चाहता। (श्यामसिंहसे) क्यों राजासाहब ?

श्याम०—जहाँपनाह जसवन्तसिंहके परिवारपर सदासे असीम अनुग्रह दिखाते आ रहे हैं।

समर०—सम्राट् !—मुझसे बिना कहे रहा नहीं जाता दुर्गादास—सम्राट्, आप इतनी ही कृपा कीजिए कि खुश करनेका इरादा छोड़ दीजिए। आपकी भौंहोंमें बल पड़नेसे मैं उतना नहीं डरता, क्यों कि उनका भाव समझमें आ जाता है। किन्तु आपकी हँसी देखकर बड़ा डर लगता है जनाब, क्योंकि उसका भाव कुछ समझमें नहीं आता।—सीधी भाषामें कहिए कि आप जसवन्तसिंहका सर्वनाश करना चाहते हैं, उनकी जिस तरह हत्या कराई है, उनके बड़े लड़के पृथ्वीसिंहको जिस तरह मार डाला है, वैसे ही उनकी रानी और छोटे कुँअरको भी मारना चाहते हैं। कहिए, सीधी भाषामें कहिए कि जसवन्तसिंहके कुलमें किसीको न रखिएगा। कहिए—हम समझ सकेंगे। मैं आपसे यही भिक्षा माँगता हूँ कि आप अनुग्रह न करें जनाब, आप लोगोंकी शत्रुतासे मित्रता बहुत भयानक है।

दुर्गा०—भैया, तुम क्या मेरी प्रार्थनाको व्यर्थ करनेके लिए आये हो ?—तुम लौट जाओ।

समर०—जाता हूँ दुर्गादास, और एक बात—केवल एक बात कहूँगा। मैं एक बातमें जनाबके पूर्व पुरुष अकबरकी अपेक्षा जनाब-पर अधिक श्रद्धा रखता हूँ। क्योंकि आप उनकी तरह मीठी छुरी नहीं हैं। आप खालिस मुसलमान—सरल गँवार कट्टर मुसलमान हैं। आप उनकी तरह व्याहके बहानेसे हिन्दुओंका हिन्दूपन नहीं नष्ट करते। सीधी, साफ और पैनी पुरानी मुसलमानी रीतिसे अपने धर्मका प्रचार करते हैं।—कहिए, इससे मैं नहीं डरता। बस, अनुग्रह न कीजिएगा। जो अनुग्रह आप कर चुके हैं वही काफी है। वह अनुग्रह अभीतक हमारे सँभाले नहीं सँभला। दोहाई है, अब और अनुग्रह न कीजिएगा!—　　(प्रस्थान)

(तहव्वरखाँका आगे बढ़कर समरदासको रोकनेकी चेष्टा करना और औरंगज़ेबका मना करना।)

औरंग०—दुर्गादास, तुम्हारी खातिरसे मैंने तुम्हारे बदमिज़ाज़ भाईको माफ कर दिया। लेकिन तुम्हारे भाईने एक बात सच कही। मैं मीठी छुरी और ढोंगी नहीं हूँ। मैं भीतर और बाहर मुसलमान हूँ। इस पुराने मज़हबको फैलाने और बढ़ानेके लिए ही मैं इस तख्तपर बैठा हूँ। तख्तपर बैठनेके पहले मैंने चाहे जो किया हो—बादशाह होनेके बादसे मैं इसी धर्मकी फकीरी कर रहा हूँ।

दुर्गा०—इस बातको मैं मानता हूँ जहाँपनाह,—उसके बाद भी अगर आपने किसीके साथ बुरा बर्ताव किया होगा तो बुरे आदमीके साथ। सो तो कुछ अनुचित नहीं है। इसको दयाकी दृष्टिसे उचित चाहे न भी कहें, लेकिन नीतिके विरुद्ध कभी नहीं कह सकते।

औरंग०—यह तुम मानते हो ?

दुर्गा०—मानता हूँ। लेकिन जहाँपनाह, महाराज जसवन्तसिंहने अगर कभी भ्रमवश आपकी मर्जीके खिलाफ काम किया हो, तो भी उनकी विधवा रानी और नासमझ नन्हा बच्चा सम्राट्की कोपदृष्टिमें पड़नेके पात्र नहीं है। उन्होंने कुछ अपराध नहीं किया।

औरंग०—दुर्गादास, मैं उनको सताना नहीं चाहता; खुश करना चाहता हूँ।

श्याम०—सम्राट् उनको खुश करना चाहते हैं दुर्गादास!

दुर्गा०—सम्राट्की इस इच्छाको जानकर ही महारानीकी खुशीका ठिकाना न रहेगा।—बस अब आज्ञा दीजिए।

औरंग०—(श्यामसिंहसे) राजासाहब, इस समय आप मेरी खास बैठकमें चलकर ठहरिए। मैं आता हूँ। (श्यामसिंहका प्रस्थान)

औरंग०—(दुर्गादाससे) मैं देखता हूँ कि तुम सिर्फ मालिकके जाँनिसार नौकर ही नहीं हो; तुम सल्तनतके दाव-पेचोंमें भी खूब होशियार हो। तुमसे चालाकी करना फिजूल है। तो सच बात सुनो, मैं जसवन्तसिंहकी रानी और कुँअरको चाहता हूँ।

दुर्गा०—सो तो मैं पहलेसे जानता हूँ जहाँपनाह, लेकिन इसका कुछ कारण नहीं जान पड़ता। महारानी स्त्री हैं, और जसवन्तसिंहका लड़का दुधमुँहा बच्चा है। उन्हें लेकर सम्राट् क्या करेंगे?

औरंग०—दुर्गादास, शायद यह तुम जानते हो कि हिन्दोस्तानका बादशाह हरएक रिआयाके आगे अपने हरएक कामका मतलब बतलानेके लिए मजबूर नहीं है।

दुर्गा०—(घडीभर सोचकर) तो जहाँपनाह, मेरी प्रार्थना बिल्कुल बेकार है?

औरंग०—हाँ, बिल्कुल बेकार है।

दुर्गा०—तो फिर मुझे और कुछ कहना नहीं है।

औरंग०—तुम जसवन्तसिंहकी रानी और बच्चेको मुझे सौंपनेके लिए तैयार नहीं हो ?

दुर्गा०—जबतक दम है तबतक नहीं।

औरंग०—सुनो दुर्गादास, तुम जसवन्तसिंहकी रानी और बच्चेको मुझे दे दो। मैं तुम्हें खूब इनाम दूँगा।

दुर्गा०—(हँसकर) सम्राट्, मैं इस दर्जेके आदमियोंसे कुछ ऊँचे खयालका आदमी हूँ। दुर्गादास जीवनमें केवल अपने कर्त्तव्यको मुख्य मानता है और उसे ही पहचानता है। दुर्गादासके दममें दम रहते किसीकी मजाल नहीं कि उसके स्वर्गवासी स्वामी जसवन्तसिंहके परिवारके किसी आदमीके बदनपर हाथ लगा सके।—अच्छा चलता हूँ जहाँपनाह, आदाब !

औरंग०—ठहरो। दुर्गादासके दममें दम रहते शायद वैसा न हो सके; लेकिन दुर्गादासके मरनेपर तो हो सकेगा ?—तहव्वरखाँ, गिरफ्तार कर लो।

[तहव्वरखाँ आगे बढ़ता है।]

दुर्गा—(म्यानसे तलवार खींचकर) खबरदार !—इसके लिए भी तैयार होकर आया हूँ जनाब।

(दुर्गादास कमरमें लटकती हुई तुरही या बिगुलको बजाते हैं और उसे सुनकर तत्काल ही नंगी तलवार हाथमें लिये पाँच राजपूत दरबारमें घुस आते हैं।)

दुर्गा०—ये पाँच आदमी आपने देखे जहाँपनाह ?—अबकी तुरही बजाते ही यहाँ पाँच सौ आदमी मौजूद हो जायँगे—समझकर काम कीजियेगा।

औरंग०—जाओ।

(सिपाहियोंसहित दुर्गादासका प्रस्थान)

औरंग०—(दमभर सन्नाटेमें रहनेके बाद) दुर्गादास, मैं जानता था कि तुम मालिकके खैरख्वाह, होशियार, दिलेर, बहादुर हो। लेकिन मुझे यह खयाल न था कि तुम्हारी इतनी हिम्मत हो जायगी।—(तहव्वरखाँसे) तहव्वरखाँ !

तहव्वर०—खुदावन्द !

औरंग०—सिपहसालार दिलेरखाँसे कहो, मेरा हुक्म है, कि वह अभी फौज ले जाकर जसवन्तके घरको घेर ले। जाओ।

(पर्दा बदलता है।)

दूसरा दृश्य

स्थान—दिल्लीके शाही महलमें बेगम गुलनारका कमरा

समय—दोपहर

गुलनार—(कमरेमें टहलती हुई आप-ही-आप) जोधपुरकी रानी !—तूने एक दिन गरूरके मारे मुझे मेरे सामने 'मोल ली हुई बाँदी बेगम' कहा था। तेरे उस घमंडको आज मैंने ठुकराकर चूर कर दिया कि नहीं ? तेरे शौहरको काबुल भेजकर कत्ल करवा डाला, तेरे बड़े लड़केको जहर देकर मरवा डाला। अब तेरे सामने ही तेरे छोटे लड़केकी जान लूँगी। तुझको अपने पैरोंका धोअन पिलाऊँगी। फिर तुझे जीते ही गड़वा दूँगी। जानती है जोधपुरकी रानी ! यह मोल ली हुई बाँदी बेगम ही आज इस मुगलोंकी बड़ी भारी सल्तनतपर हुकूमत कर रही है।—और औरंगजेब ?

औरंगजेब तो मेरे हाथकी पुतली—मेरी उँगलीके इशारेपर नाचनेवाले हैं। पर लोग कुछ और ही समझते हैं। यह लोगोंकी हददर्जेकी बेवकूफी है। नहीं तो इस जसवन्तसिंहकी रानी और बच्चेकी औरंगजेबको क्या जरूरत थी, कोई अपने दिलसे एक दफा भी यह सवाल नहीं करता !

[औरंगज़ेबका प्रवेश]

गुलनार—कौन ? बादशाह सलामत ?—बन्दगी जहाँपनाह !

औरंग०—गुलनार, तुम यहाँ अकेली ?

गुलनार—जोधपुरकी रानीकी राह देख रही थी।—कहाँ है वह ?

औरंग०—अभी तक पकड़ी नहीं जा सकी।

गुलनार—अभी तक पकड़ी जा नहीं सकी ?

औरंग०—नहीं।—दुर्गादास उसे देनेके लिए राजी न हुआ और दरबारसे लौट गया।

गुलनार—ज़िन्दा लौट गया ?

औरंग०—हाँ, उसके साथ फौज थी।

गुलनार—और आपके यहाँ क्या फौज न थी ?—बड़ी शर्मकी बात है।

औरंग०—प्यारी—

गुलनार—मैं कोई बात सुनना नहीं चाहती जहाँपनाह ! मैं आज ही शामके पहले जोधपुरकी रानीको चाहती हूँ।

औरंग०—गुलनार, मैंने रानीका घर घेरनेके लिए दिलेरखाँको भेजा है।

गुलनार—अच्छा !—शामके पहले मैं उसे चाहती हूँ। याद रहे।

(प्रस्थान)

औरंग०—(जाते जाते अपने आप) इस दुर्गादासकी कैसी हिम्मत है ! अभी तक सोच रहा हूँ।—मेरे दरबारमें मेरे सामने तलवार निकालकर और घोड़ेपर चढ़कर चल दिया !—ऐसी हिम्मत पहले किसीकी, उसके मालिक जसवन्तसिंहकी भी, नहीं देखी गई।

(धीरे धीरे प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—मुगल-सेनापति दिलेरखाँके घरकी बाहरी बैठक

समय—तीसरा पहर

[दिलेरखाँ फौजी पोशाक पहन रहा है और उसका प्रधान कर्मचारी तहव्वरखाँ सामने खड़ा है।]

दिलेरखाँ—क्या कहा खाँसाहब ? राठौर सेनापति दुर्गादास बादशाहकी नाकके पास तलवार घुमाकर चला गया ?

तहव्वरखाँ—हाँ !

दिलेर०—और तुम खड़े खड़े देखा किये ?

तहव्वर०—जी हाँ !

दिलेर०—सीधे होकर ?

तहव्वर०—जहाँतक हो सका।

दिलेर०—जहाँतक हो सका, इसका क्या मतलब ?

तहव्वर०—यही, बादशाहकी नाकके ऊपर उसकी तलवार घूमी थी न—

दिलेर०—बादशाहकी नाकके ऊपर घूमी ?

तहव्वर०—बादशाहकी नाकके ऊपर घूमी—और खूब घूमी !

दिलेर०—तब शायद तुम जरा टेढ़े हो गये ?

तहव्वर०—हाँ साहब, टेढ़ा हो गया। मैं था, इससे टेढ़ा हो गया और कोई होता तो चित्त हो जाता !

दिलेर०—अपनी तलवार क्यों नहीं निकाली ?

तहव्वर०—तलवार निकालनेका वक्त ही कहाँ मिला ?

दिलेर०—वक्त ही नहीं मिला ?

तहव्वर०—अरे उस राजपूतने एकाएक इतनी जल्दी तलवार खींच ली कि कोई भी भला आदमी तलवार खींचनेमें उतनी फुर्ती न करेगा ! बादको उसके चले जानेपर—

दिलेर०—शायद तुमने तलवार खींची ?

तहव्वर०—तब फिर तलवार खींचकर क्या करता ?

दिलेर०—उसके चले जानेपर फिर तुमने क्या किया ?

तहव्वर०—नाकपर हाथ लगाकर देखा—नाक है कि नहीं !

दिलेर०—शायद तुमको नाकके होनेमें शक हुआ ?

तहव्वर०—कुछ शक तो जरूर हुआ। उस राठौरने इस तरह जल्दीसे तलवार खींचकर घुमाई थी कि उसके साथ नाकका कुछ हिस्सा चला जाना ताज्जुब न था।

दिलेर०—(मुसकराकर) बेशक बिलकुल नई बात थी। दुर्गादास देखनेके लायक आदमी है।

तहव्वर०—उसे देखनेके लिए ही बादशाहने तुमको बुलाया है। तुम्हारा तो पोशाक पहनना ही खतम नहीं होता !

दिलेर०—अरे ठहरो ! इस वक्त जरा आराम करनेको जी चाहता था कि हुक्म हुआ, अभी एक पागलका पीछा करो। क्या यह मामूलीसा काम तुम नहीं कर सकते थे ?

तहव्वर०—नहीं, मैं उसके साथ ज्यादह जान-पहचान बढ़ाना पसन्द नहीं करता।—इसके सिवा—

दिलेर०—इसके सिवा ?

तहव्वर०—इसके सिवा राजपूत कौमपर मुझे एक तरहकी नफरत है। वे लोग लड़ना नहीं जानते।

दिलेर०—किस तरह ?

तहव्वर०—अरे वे लड़ते हैं, लेकिन लड़ाईका कोई कायदा मानकर नहीं लड़ते। चट तलवार निकाली और झट सिर काट डाला। अपने सिरका कुछ खयाल ही नहीं रखते। मैंने देखा, उसकी नजर बराबर मेरे ही इस सिरपर थी। ऐसे बेवकूफसे लड़ाई लड़नी चाहिए ?

दिलेर०—नजर शायद तुम्हारे ही सिरपर थी ?

तहव्वर०—हाँ। अरे अपने सिरका खयाल रखकर लड़ा जाता है—वह तो उधरका कुछ भी खयाल न रखकर तलवार घुमाने लगा! दुश्मनोंकी फौजको तो उसने घुइयोंका जंगल ही समझ लिया ?

दिलेर०—राजपूतोंकी फौज कितनी है ?

तहव्वर०—कोई ढाई सौ होगी।

दिलेर०—जाओ तहव्वरखाँ, पाँच हजार मुगल-सिपाहियोंको तैयार होनेका हुक्म दो। जो लोग जानकी पर्वा न करके जंगमें जुट जाते हैं, उन्हें एक खौफनाक कौम समझना चाहिए; उनसे सोच-समझकर भिड़ना चाहिए। पाँच हजार मुगल-सवार—समझे ?—जाओ।

(तहव्वरका प्रस्थान)

दिलेर०—(अपने मनमें) यह राजपूत कौम बेशक बड़ी दिलेर कौम है। लेकिन बादशाहके इस हुक्मका तो कुछ मतलब समझमें

नहीं आता। उन्होंने जसवन्तसिंहको कत्ल करा डाला, इस लिए कि उनसे बादशाह खौफ खाते थे। लेकिन अब राजा साहबकी रानी और बच्चेपर यह नाराज़गी—यह सितम—किस लिए है ?-—चलूँ, घरमें बीबी और बच्चोंसे मिल लूँ। मुमकिन है कि लड़ाईसे न लौटूँ।

(प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान—मेवाड़के राणा राजसिंहका महल

समय—तीसरा पहर

[राजकुमार जयसिंहकी अभी ब्याहकर लाई हुई दूसरी स्त्री कमलादेवी अकेली खड़ी हुई है।]

कमला—(आप-ही-आप) तुमको कैसा पेंचमें डाला है स्वामी! अब उसीमें भरमते रहो! बड़ी रानी तो जैसे सन्नाटेमें आ गई हैं। एक दूसरे आदमीने आकर इतने थोड़े दिनोंमें उनके मुँहका कौर छीन लिया, कैसे दुःखकी बात है !—हाः हाः हाः-—मन्त्र जानती हूं बड़ी रानी, मन्त्र जानती हूँ !—खूब हुआ! ऐसे स्वामी,—राणा राजसिंहके पुत्र,—ऐसे स्वामीको अकेले पाकर अपने ही सुखकी सामग्री बनाना चाहती थीं बड़ी रानी ? लाज भी नहीं आई !—राजाके यही पुत्र तो मेवाड़के राणा होंगे। और तुमने अकेले रानी होना विचारा था ? पर यह हो नहीं सकता बड़ी रानी! कैसी चील्हकी तरह झपट्टा मारकर छीन लिया है !—क्यों ? रानी होओगी ? होओ! और भीमसिंह, तुम राणा होओगे ? हो चुके! राणाने अपने हाथसे मेरे स्वामीके हाथमें ' राखी ' बाँध दी है, जानते हो ? जेठजी, इसकी कुछ खबर है ? इसके सिवा

मेरे स्वामी ही तो राणाको प्यारे हैं। करोगे क्या भीमसिंह ?—दोनों भाइयोंमें खूब झगड़ा ठनवा दिया है। भीमसिंह अभीसे जायँ, दूर हों, ऐसी ही चाल लड़ाई है। उस चालमें तुमको मात खानी ही पड़ेगी। उसके बाद महाराणा जयसिंह मेवाड़के राणा होंगे और श्रीमती कमलादेवी मेवाड़की महारानी बनेंगीं—और तुम बड़ी रानी,—हट जाओ —बड़ी रानी !—खिसक जाओ !

[चिल्लाती हुई एक धायका प्रवेश]

धाय—अरे बापरे !

कमला—क्या हुआ ?

धाय—अरे बापरे ! एकदम महाभारत—ऐसा काण्ड तो कभी देखा ही नहीं था जी—अरे बापरे !

कमला—मर हरामजादी ! मैं पूछती हूँ, हुआ क्या ?

धाय—अरे एकदम लंकाकांड है, और क्या ?

कमला—अरे कह तो सही, हुआ क्या ?

धाय—यही छोटे कुँअर—यही जयसिंह—तुम्हारे स्वामीजी—

कमला—हाँ, उन्होंने क्या किया ?

धाय—उन्होंने, यही बड़े कुँअर जो भीमसिंह हैं—उनके पैरमें तलवार निकालकर एक हाथ—अरे बापरे, एकदम खूनकी नदी !

कमला—ऐं !—उसके बाद ?

धाय—उसके बाद फिर क्या ?—बड़े कुँअर भीमसिंहने छोटे कुँअर जयसिंहकी गर्दन पकड़ ली। इसी समय राणासाहब आ पहुँचे। आकर उन्होंने बड़े कुँअरको बहुत बका-झका—वे एकदम सातों काण्ड रामायण सुना गये। भीमसिंहने एक बात भी नहीं कही। चुपचाप बाहर चले गये। बेचारेका चेहरा उदास हो गया।

कमला—अच्छा हुआ।

धाय—यह तुम क्या कह रही हो! बड़े कुँअर बहुत अच्छे स्वभावके आदमी हैं। देशभरके आदमी उन्हें अच्छा कहते हैं। और छोटे कुँअर भी अच्छे हैं। मैंने तो उन्हें अपने हाथों खिलाया है।—सारे झगड़ोंकी जड़ बस तुम्हीं हो बहू।

कमला—चुप हरामजादी।

धाय—अरे बापरे! यह तो एकदम ताड़का देख पड़ती है।

(धाय जान लेकर भागती है।)

कमला—(आप-ही-आप) क्या! यहाँतक नौबत आ गई? यहाँतक बात बढ़नेकी बात तो मैंने भी नहीं सोची थी। खैर, बुरा ही क्या है! पहलेहीसे फैसला हो जाना चाहिए।

[सरस्वतीका प्रवेश]

सरस्वती—कमला, यह क्या तुम्हारे योग्य काम हो रहा है बहन? जानती हो, आज क्या हुआ है?

कमला—सो तो जानती हूँ—मगर इसमें मैंने क्या किया?

सरस्वती—स्वामीको बराबर तुम बड़े भाईके विरुद्ध बहकाती हो—जोश दिलाती हो।

कमला—कौन कहता है?

सरस्वती—मैं कहती हूँ।

कमला—झूठ बात है। जेठजी ही तो झगड़ा खड़ा करते हैं—उनकी नजर सदासे मेवाड़की गद्दीपर है। यही तो उनका दोष है।

सरस्वती—छोटी रानी, यह मुझे अच्छी तरह मालूम है कि वे इस गद्दीको नहीं चाहते,—और अगर उनकी नजर इस गद्दीपर हो भी, तो उसमें अनुचित क्या है? बड़े भाई तो वे ही हैं!

कमला—हाँ, घंटे दो घंटेकी बड़ाई-छुटाई जरूर है। मगर राणा साहबने खुद छोटे कुँअरको, पैदा होनेके दिन, राखी बाँध दी है। इसीके कारण तो झगड़ा है।

सरस्वती—अगर यही सच है, तो हमें ऐसी चेष्टा क्यों न करनी चाहिए कि जिसमें यह भाई-भाईका विरोध मिटकर दोनोंमें प्रेम बढ़े; जिसमें यह काला बादल, वज्र न गिराकर, पानी होकर बरस जाय और उससे प्रेमकी बेल लहलहा उठे; जिसमें यह आग सब कुछ जलाकर राख न कर दे, बल्कि दो हृदयोंको गलाकर एकमें ढाल दे।

कमला—मैं इस बातपर तुम्हारे साथ विचार करना नहीं चाहती। अपने स्वामीकी बात मैं आप समझ लूँगी।

सरस्वती—बहन, क्या वे तुम्हारे ही स्वामी हैं, मेरे कोई नहीं?

कमला—तो तुम्हीं उनसे समझाकर कहो। मेरे साथ झगड़ा करने क्यों आई हो? (प्रस्थान)

सरस्वती—मैं उनसे समझाकर कहूँ? हाय रे भाग्य! एक दिन ऐसा था, जब वे मेरी बात सुनते थे। उसके बाद तुमने आकर उनपर कौनसा जादू कर दिया, सो तुम्हीं जानो बहन!

[जयसिंहका प्रवेश]

जयसिंह—कौन?—सरस्वती? मैं समझा था, कमला है।

सरस्वती—समझे थे, सच? इतनी बड़ी भूल की थी? किन्तु वह भूल इतनी जल्दी क्यों मालूम पड़ गई? वह भूल समझनेके पहले मुझे कमला जानकर, एक बार प्राणेश्वरी कहकर, पुकारा क्यों नहीं? मैं भूलसे ही एक बार समझ लेती कि मुझे पुकार रहे हो! मुझे भी

राणा—नहीं भीमसिंह, मैं अन्याय-विचार नहीं कर सकता। लोग कहते हैं, मैं जयसिंहको प्यार करता हूँ। यह हो सकता है; किन्तु विचारमें मैं न्याय ही करूँगा।

भीम०—मैं उसे क्षमा करता हूँ।

राणा०—नहीं भीमसिंह, दण्ड दो। और एक बात मैं देखता हूँ कि कुछ दिनोंसे, चाहे जिस कारणसे हो, तुम दोनों भाइयोंकी बनती नहीं है। आगे चलकर भी शायद तुम्हारी यह अनबन नहीं मिटेगी। दोनों भाई राज्यके लिए युद्ध करोगे। मेरे मरनेके बाद यह हो, इसकी अपेक्षा मेरी जिन्दगीमें ही फैसला हो जाय तो अच्छा। इससे राज्यको हानि न पहुँचेगी। यह लो तलवार। युद्ध करो।

भीम०—पिताजी, मैं राज्य नहीं चाहता। मैं कसम खाता हूँ कि राज्यके लिए जयसिंहसे झगड़ा न करूँगा।

राणा०—इसका प्रमाण क्या है?

भीम०—मैं इसी घड़ी यह राज्य छोड़कर चला जाता हूँ।—प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस राज्यके भीतर अगर जल-पान भी करूँ, तो मैं आपका लड़का नहीं।

राणा—(कुछ देरतक निस्तब्ध रहकर) तुमने आज बड़ी कठिन प्रतिज्ञा की हैं भीम,—तुम निर्दोष हो; जयसिंहके दोषके कारण तुम राज्यसे जन्मभरके वास्ते निकल जाओगे! मैंने भूलसे राखी जयसिंहके हाथमें बाँध दी थी। इस समय जान पड़ता है कि राज्यकी भलाईके लिए इस राज्यको छोड़कर तुम्हारा चला जाना ही ठीक है। किन्तु स्मरण रखना भीम, तुम यह स्वार्थत्याग राज्यकी भलाईके विचारसे कर रहे हो!

भीम०—आपके चरणोंकी ऐसी कृपा हो कि मैं इस राज्यकी भलाईके लिए ही अपने प्राण अर्पण कर सकूँ। प्रणाम पिताजी, (जयसिंहसे) भाई, आशीर्वाद देता हूँ कि तुम विजयी और यशस्वी होओ।

(प्रस्थान)

राणा—मेरा सच्चा लड़का है।—जयसिंह, वीरता किसे कहते हैं, देखो और सीखो।

(एक ओरसे राणा और दूसरी ओरसे जयसिंह जाते हैं।)

पाँचवा दृश्य

स्थान—दिल्लीमें जसवन्तसिंहका महल, दुमंजिलेका बरामदा।

समय—तीसरा प्रहर

[दुर्गादासके भाई समरदास और जोधपुरके सामन्त लोग उत्तेजित भावसे खड़े हैं।]

विजयसिंह—(समरदाससे) तो तुम हम लोगोंके विचारको व्यर्थ कर आये?

समरदास—क्रोधको सँभालना और कपटकी बातें करना मैंने सीखा नहीं।

मुकुन्दसिंह—तो फिर तुम वहाँ गये क्यों?

समरदास—जानेका एक मतलब था।—मैं उस पापी नरपिशाचको एक बार सामने खड़े होकर अच्छी तरह देखना चाहता था। मैं बादशाहसे कोई प्रार्थना करने नहीं गया था। वह काम दुर्गादास करें। मुझमें कौशल नहीं है, चातुरी नहीं है। मेरे सहायक भगवान् हैं, और यह तलवार है।

सुबलसिंह——सेनापति अभीतक दरबारसे लौटकर नहीं आये, क्या बात है ?

विजयसिंह——बादशाहने धोका देकर उन्हें कैद तो नहीं कर लिया !

समरदास——(उत्तेजित भावसे) क्या यह भी सम्भव है ?

सुबल——कभी नहीं। हमारे सेनापति अच्छी तरह सोचे-समझे बिना किसी काममें हाथ नहीं लगाते।

मुकुन्द०——इस दुर्दिनमें हम लोगोंको उन्हींका एक सहारा है। यह तुरहीका शब्द सुन पड़ता है।—लो, वे सेनापति हैं, अपने घोड़ेको बेतहाशा भगाये चले आ रहे हैं।

विजय०——वे आ ही गये। चलो नीचे चलें। सुने, क्या खबर है।

सुबल०——जरूरत क्या है ? सेनापतिको यहीं न आने दो।

[नेपथ्यमें दुर्गादासका स्वर सुन पड़ता है।]

' तैयार रहो, तैयार रहो। '

समर——तैयार ? किस लिए ?

सुबल०——वे देखो दुर्गादास ऊपर ही आ गये।

[पसीनेसे तर दुर्गादासका प्रवेश]

दुर्गा०——सब लोग तैयार हो जाओ।

समर०——किस लिए ?

दुर्गा०——अपनी रक्षाके लिए।

विजय०——क्या खबर है, सुनें तो।

दुर्गा०——विस्तारके साथ कहनेके लिए समय नहीं है विजयसिंह, जसवन्तसिंहजीकी रानीको बादशाह नहीं छोड़ेगा; वह उनको पकड़ना चाहता है। महारानी और उनके पुत्रको बचाना होगा। मुगलसेना आकर अभी इस घरको घेर लेगी।

विजय० —फिर उपाय क्या है ?

दुर्गा०—यही उपाय है कि हम लोग प्राण देनेके लिए तैयार हो जायँ। मित्रो, भाइयो, महारानीके लिए प्राण देनेको कौन कौन तैयार है ?

सब—हम सभी तैयार हैं।

दुर्गा०—किन्तु, केवल प्राण देनेसे ही काम न होगा। महारानी और कुँअरको ऐसी जगह पहुँचाना चाहिए, जहाँ खटका न हो।

[रानीका प्रवेश]

रानी—(स्थिर स्वरसे) जसवन्तसिंहकी रानीके लिए कुछ खटका नहीं है। उसके लिए चिन्ता न करो दुर्गादास, उसके पुत्रको—जोधपुर-नरेशके कुल-दीपकको बचाओ। इस वंशकी रक्षा करो। रानीके लिए भय नहीं है। वह मरना जानती है।—बच्चेको बचाओ दुर्गादास!

दुर्गा०—कुँअरको बचानेमें कोई कसर न रहेगी महारानी, कुँअरको ले आइए।

(रानीका प्रस्थान)

दुर्गा०—विजयसिंह, कासिमको बुलाओ।

(विजयका प्रस्थान।)

दुर्गा०—भाई, बाहर एक मिठाईका झाबा रक्खा है, उसे ले आओ।

समर०—मिठाईका झाबा! किस लिए ?

दुर्गा०—यह बतानेके लिए समय नहीं है भाई,—जाओ, ले आओ।

(समरसिंहका प्रस्थान)

दुर्गा०—लो मुकुन्ददास,—यह कासिम आ गया।

[विजयसिंहके साथ कासिमका प्रवेश]

कासिम—(दुर्गादासको बन्दगी करके) सरदार, क्या हुआ है?

दुर्गा०—कासिम, तुमको एक काम करना होगा। राजकुमारकी जान बचानी होगी। मुगलोंकी सेना अभी आयगी कुँअरको छीननेके लिए—तुम्हें उन्हें बचाना होगा।

कासिम—जिस तरह आप कहिए, मैं कुँअरकी जान बचानेके लिए तैयार हूँ।

[झाबा लिये समरदासका प्रवेश]

दुर्गा०—तुम इसी मिठाईके झाबेमें कुँअरको रखकर ऊपरसे कपड़ा ढककर ले जाओ। तुम मुसलमान हो, तुमपर किसीको सन्देह न होगा।—समझे?

कासिम—कहाँ जाना होगा सरदार?

दुर्गा०—दूरपर वह मन्दिरका कलशा देख पड़ता है?

कासिम—हाँ, देख पड़ता है।

दुर्गा०—उसी मन्दिरके पुजारीके पास कुँअरको छोड़ आओ। उसके बाद जो करना होगा सो पुजारीको मालूम है। मुगलोंकी सेना आती ही होगी। तुम अभी जाओ।

कासिम—बहुत अच्छा सरदार, मैं कुँअरके लिए जानतक दे सकता हूँ।

दुर्गा०—सो मैं जानता हूँ कासिम,—नहीं तो यह काम तुमको न सौंपता।

[कुँअरको लिये रानीका प्रवेश]

दुर्गा०—रानीजी, कुँअरको कासिमके हाथमें दे दीजिए।—कोई डर नहीं है—मैं कहता हूँ।

रानी—तुम कहते हो तो मुझे कुछ डर नहीं है दुर्गादास—कासिम, तुम्हारे भी धर्म है ।

कासिम—कोई डर नहीं है रानीसाहब, मैं कुँअरको अपनी जानसे बढ़कर समझूँगा ।

(कासिमका रानीके हाथसे कुँअरको लेना)

रानी—(फिर कासिमके हाथसे कुँअरको लेकर चूमकर गद्गद स्वरसे) मेरे प्यारे बेटा !

दुर्गा०—दीजिए ।—अब समय नहीं है ।

रानी—(फिर कुँअरको चूमकर और कासिमके हाथमें देकर) धर्म साक्षी है कासिम !

कासिम—मैं खुदाको गवाह करता हूँ । कोई डर नहीं है ।

(बच्चेको झाबेमें रखकर झाबेको कासिमने सिरपर रक्खा ।)

समर०—अगर राहमें कासिमको कोई पकड़ ले ?

रानी—अगर कोई पकड़ ले कासिम, तो यह छुरी कुँअरके कलेजेमें भोंक देना । जीतेजी कुँअरको कोई औरंगजेबके पास न ले जा सके ।

(छुरी देना)

दुर्गा०—कोई डर नहीं है रानीसाहब,—जाओ कासिम, इस पीछेके चोर-दरवाजेसे निकल जाओ,—आओ, रास्ता दिखा दें ।

(झाबा लेकर कासिमका प्रस्थान । उसके पीछे दुर्गादास और उनके पीछे रानीका जाना ।)

विजय०—दुर्गादास, धन्य है तुम्हारी समयपरकी सूझ-बूझको !

सुबल०—यह मैं निश्चित रूपसे कह सकता हूँ कि बादशाहके पास जानेके पहले ही दुर्गादास यह सब प्रबन्ध कर गये थे ।

मुकुन्द०—लो, वह मुगल-सेना आ रही है ।

विजय०—यह तो बेशुमार सेना है ।

सुबल०—साथमें खुद सेनापति दिलेरखाँ है ।

[दुर्गादासका फिर प्रवेश]

दुर्गा०—बस, अब कोई चिन्ता नहीं रही । मुगल-सेना आ गई है—अब तुम लोग मरनेके लिए तयार हो जाओ ।

विजय०—और स्त्रियाँ ?

दुर्गा०—उनका भी उपाय किये देता हूँ । बादशाहके पास जानेके पहले ही इस बारेमें क्यों न सोच समझ लिया ?—बुलाओ स्त्रियोंको भैया !

(समरदासका प्रस्थान)

मुकुन्द०—वह देखो मुगल-सेना आ गई !

विजय०—गोलियाँ चला रहे हैं !

सुबल०—दरवाजा तोड़नेकी चेष्टा कर रहे हैं !

मुकुन्द०—आग जला रहे हैं, शायद इस घरमें आग लगावेंगे ।

दुर्गा०—अब हम स्त्रियोंके लिए कुछ प्रबन्ध न कर सकेंगे—समय नहीं रहा ।

[स्त्रियोंके साथ समरदासका प्रवेश]

दुर्गा०—माताओ, बेटियो, बहिनो आज तुम्हारे लिए बहुत ही कड़ी व्यवस्था करनी पड़ी । आज तुमको आगमें जलकर मरना होगा ।

एक प्रौढा स्त्री—यह तो हम लोगोंके लिए कोई नई बात नहीं है सेनापति, हम क्षत्रियोंकी—वीरोंकी—स्त्रियाँ हैं, मरना जानती हैं।

दुर्गा०—और कोई उपाय नहीं है माताओ, हम लोग मरने जाते हैं । तुम सब भी जाओ। उस कमरेमें जाओ, उस कमरेमें बारूद भरी है । उसमें केवल तुम लोगोंके खड़े रहने भरके लिए जगह है। बारूदके ऊपर जाकर खड़ी हो जाओ, उसके बाद और क्या कहूँ माताओ !—

एक स्त्री—उसके बाद हम अपने हाथसे आग लगा लेंगीं। चलो बहिनो!

[बाल खोले रानीका प्रवेश]

स्त्रियाँ—महारानीकी जय हो।

रानी—जय?—हमारी जय मौत है। मरने जाती हो?—जाओ! जाओ स्वर्गधाममें! मैं आज तुम्हारे साथ न जाऊँगी। मैं आज अगर हो सका तो अपनेको बचाऊँगी।—मैं भी मरना चाहती थी दुर्गादास, पर नहीं, अभी मैं नहीं मरूँगी। ऊपर आकाशसे मानों मुझसे कोई कह रहा है—'अभी समय नहीं आया—तुम्हारा काम बाकी है।' मुझे रहना होगा। दुर्गादास, अगर हो सके तो मुझे आज बचाओ। (घुटनोंके बल बैठकर और हाथ जोड़कर) ईश्वर, आज मेरी रक्षा करो! (उठकर) उसके बाद—उसके बाद—देशमें आग सुलगाऊँगी, ऐसी आग सुलगाऊँगी कि सात समुद्रोंका पानी भी उसे न बुझा सकेगा।

दुर्गा०—हो सकेगा तो हम आज प्राण देकर महारानीकी रक्षा करेंगे।—तुम सब माताओ! जाओ, फाटक शत्रुओंकी लातोंसे टूटना ही चाहता है।

(रानीके सिवा और सब स्त्रियोंका प्रस्थान)

रानी—तो फिर चलो दुर्गादास।—ठहरो। मैं अपनी लड़की ले आऊँ, उसे छोड़ न जाऊँगी। छातीसे लगाकर ले जाऊँगी।—तुम सब चलो। (प्रस्थान)

दुर्गा०—भाई!

संभर०—भाई!

दुर्गा०—तो फिर चलो मरने।

समर०—चलो।

दुर्गा०—जरा ठहरो, स्त्रियोंका अन्त देखते चलें। यह—यह—(दूरपर भयानक शब्द सुन पड़ता है) सब संमाप्त हो गया !—बस, अब चलो।

समर०—चलो।

दुर्गा०—भाई, शायद यही आखरी मुलाकात हो। आओ, एक बार गलेसे मिल लें।

(दोनों मिलते हैं और पर्दा गिरता है।)

छट्ठा दृश्य

स्थान—बादशाहका जनाना महल

समय—प्रातःकाल

(औरंगजेब अकेले टहल रहे हैं।)

औरंग०—क्या जसवंतकी रानी सिर्फ ढाई सौ राजपूतोंकी मददसे पाँच हजार मुगल सिपाहियोंके बीचमेंसे निकल गई ?—और उस मुगल फौजके साथ खुद दिलेरखाँ मौजूद था ?—इसमें जरूर कुछ खास बात है !—दरबान !—

नेपथ्यमें—खुदावन्द !—

औरंग०—सिपहसालार दिलेरखाँको हाजिर करो।

नेपथ्यमें—जो हुक्म।

औरंग०—(आप-ही-आप) अब मैं बेगमको किस तरह मुँह दिखाऊँगा ?—अपनी इस बेइज्जतीके खयालसे मेरे तन-बदनमें आग-सी लग रही है।

[तेजीके साथ गुलनारका प्रवेश]

गुलनार—बादशाह सलामत, यह जो सुनती हूँ, सो क्या सच है ?

औरंग०—क्या ?

गुलनार—यही खबर कि जसवंतकी रानी सिर्फ ढाई सौ फौजकी मददसे पाँच हजार मुगलोंके बीचमेंसे निकल गई ।

औरंग०—हाँ बेगम, सच है ।

गुलनार—तुम अपनी इसी फौज, इसी सिपहसालार और इसी ताकतसे हिन्दोस्तानपर हुकूमत करने बैठे हो ?

औरंग०—प्यारी—

गुलनार—बस, अब अपना प्यार और दुलार रहने दीजिए जहाँ-पनाह, मैंने अपनी एक मामूली ख्वाहिश पूरी करनेके लिए कहा था उसका यह अंजाम हुआ ।

औरंग०—जहाँ तक मुझसे हो सका, मैंनें कोई बात उठा नहीं रक्खी ।

गुलनार—तुमने कोई बात उठा नहीं रक्खी ?—तुम्हारी ताकत इतनी ही है ?—तुम कहना चाहते हो, आज तुम्हारे हाथमें पड़कर मुगल-बादशाहत इतनी कमज़ोर हो गई है कि एक औरत—सिर्फ ढाई सौ राजपूतोंको साथ लेकर—हिन्दोस्तानके बादशाहकी छातीपर लात रखती चली गई !—अफसोस है ! लानत है !

(औरंगजेबने कुछ नहीं कहा ।)

गुलनार—जसवंतकी रानी इस वक्त कहाँ है ?

औरंग०—शायद वह राणा राजसिंहके यहाँ मेवाड़में होगी ।

गुलनार—मेवाड़पर चढ़ाई करो—मैं जसवंतकी रानी और उसके कुँअरको चाहती हूँ ।

औरंग०—गुलनार, इसपर गौर किया जायगा।

गुलनार—गौर? बेगम गुलनारका कहना ही क्या बादशाह औरंगजेबके माननेके लिए काफी नहीं है?—गौर?—सुनो, मेरी एक बात सुनो, जसवन्तकी रानीको मेरे आगे हाजिर होना ही चाहिए। वह चाहे आसमानमें हो, चाहे जमीनपर हो और चाहे जमीनके नीचे हो, मैं उसे चाहती हूँ। मेवाड़पर चढ़ाई करो।

औरंग०—बेगम—

गुलनार—मैं और कुछ नहीं सुनना चाहती। मेवाड़पर चढ़ाई करो।

(गहरे रूठनेका भाव दिखाकर गुलनार चली जाती है और औरंगजेब अकेले यहाँ वहाँ टहलने लगते हैं।)

औरंग०—(आप-ही-आप) मुझे इस बातपर यकीन नहीं होता। सिर्फ ढाई सौ राजपूत, पाँच हजार मुगलोंकी फौजके बीचसे निकल गये! इसमें जरूर दगाबाजी है।—लेकिन इसपर ही कैसे यकीन कर लूँ कि सिपहसालार दिलेरखाँ दगाबाजी करेगा? मेरा बचपनका दोस्त, जवानीका मददगार, बुढ़ापेका सलाहकार दिलेरखाँ—सच्चा, सीधा और ऊँचे खयालका दिलेरखाँ—मुझसे—दगा करेगा?—मैं यकीन नहीं ला सकता। लेकिन ढाई सौ राजपूत पाँच हजार मुगलोंकी फौजको चीरते-फाड़ते निकल गये और उस मुगलोंकी फौजका सरदार दिलेर—निडर—और बहादुर खुद दिलेरखाँ—था, इसपर ही कैसे यकीन लाऊँ? जरूर इसके भीतर कोई खास बात है। वह दिलेरखाँ आ गया।

[दिलेरखाँका प्रवेश]

दिलेर—बन्दगी जहाँपनाह!

औरंग०—दिलेरखाँ, मैंने तुमको यह दर्याफ्त करनेके लिए बुला भेजा है कि यह बात क्या सच है कि—

दिलेर०—बादशाह सलामतने जो सुना है वह बिल्कुल ठीक है।

औरंग०—मुझे पूरी बात कह लेने दो—यह बात सच है कि नहीं कि सिर्फ ढाई सौ राजपूत पाँच हजार मुगलोंको काटते हुए उनके बीचसे निकल गये ?

दिलेर०—हाँ जनाँपनाह, यह बात बिल्कुल सच है।

औरंग०—और उस फौजके सरदार खास तुम थे ?

दिलेर०—हाँ हुजर !

औरंग०—लड़ाई हुई थी ?

दिलेर०—हुजूर, इस लड़ाईमें पाँच हजार मुगल जवानोंमें शायद पाँच सौ बचे होंगे, और राजपूतोंमें शायद पाँच जवान।

औरंग०—जसवन्तकी रानी ?

दिलेर०—वह सरदारोंके साथ उदयपुरकी तरफ गई है।

औरंज०—उसका बच्चा ?

दिलेर०—बच्चा तो उस फौजमें देख नहीं पड़ा हुजूर ! हाँ, रानी एक तीन बरसकी लड़कीको अपनी छातीसे जरूर बाँधे हुए थी।

औरंग०—मुगलोंकी फौज क्या भेड़-बकरोंसे भी गई-गुजरी है ? एक औरतको पाँच हजार जवान न रोक सके ? और उसके साथ सिर्फ ढाई सौ राजपूत थे ?

दिलेर०—मालूम नहीं जहाँपनाह, लेकिन जब वह औरत मुगलोंकी फौजके आगे आकर खड़ी हो गई—उसका मुँह खुला हुआ था, बाल बिखरे हुए थे, छातीसे लगी लड़की सो रही थी—तब महारानीकी ढाई सौ फौज ढाई लाख जान पड़ने लगी। मुगलोंकी फौजकी काली घटाके ऊपरसे बिजलीकी तरह रानी निकल गई ! उसे छूनेकी किसीको हिम्मत नहीं हुई !

औरंग०—और तुम ?

दिलेर०—मने दूरपर खड़े खड़े माकी वह अजीब मूरत देखी ! कहना चाहा कि ' पकड़ो जसवन्तकी रानीको ' मगर मुँहसे आवाज नहीं निकली ! तलवार खींचनी चाही—तलवार नहीं खिंची ! पिस्तौल ली—पिस्तौल हाथसे गिर पड़ी !

औरंग०—दिलेरखाँ, तुम क्या पागल हो गये हो ?

दिलेर०—शायद हो गया हूँ । मालूम नहीं । लेकिन उसी दम जान पड़ा, मानो मैं एक और ही आदमी हो गया हूँ । दम-भरमें मानो किसीने आकर मेरे दिलके दरवाजेपर धक्का मारकर बंद दरवाजेको खोल दिया ! मुझे दूसरी ही दुनिया देख पड़ी !

औरंग०—इसीसे तुम पत्थरकी तरह पाँच हजार फौज लिये खड़े खड़े देखा किये ?

दिलेर०—हाँ जहाँपनाह, देखा, वह एक निराली ही झलक थी ! उस पाकदामनी शान और बहादुरीके रौबमें जैसे जादू भरा था जहाँपनाह, तअज्जुब ! बाल बिखेरे, छातीपर सोई हुई लड़की लिये, रानी बेधड़क हमारी फौजके आगे खड़ी हो गई ! क्या कहूँ जहाँपनाह, कैसा वह नजारा[1] था । वह माकी मूरत सुबहसादिक[2]से भी साफ, बीनकी आवाजसे भी सुरीली और खुदाके नामसे भी पाक थी ! मैं जैसेका तैसा खड़ा रहा—मुझसे कुछ करते न बना ।

औरंग०—उसके बाद ?

दिलेर०—उसके बाद रानीके चले जानेपर होश हुआ । चिल्ला उठा—' पकड़ो । ' उसी समय हमारी ५,००० तलवारें उस शामकी

---

१ सतीत्व । २ दृश्य । उषःकाल ।

धुँधली रोशनीमें चमक उठीं। दुश्मन लोग घूमकर खड़े हो गये। लड़ाई छिड़ गई। आदमी, भूकम्पमें बालूके ढूहकी तरह, जमीनपर गिरने लगे। लड़ाई खत्म होनेपर देखा, हमारे यहाँके सिर्फ़ पाँच सौ जवान बचे हैं; दुश्मनोंका एक आदमी भी नहीं। लाशोंमें दुर्गादास और उसके भाईका पता नहीं लगा।

औरंग०—दिलेर, तुमसे तो औरत अच्छी! जाओ।

(एक ओरसे औरंगजेब और दूसरी ओरसे दिलेरखाँका प्रस्थान।)

सातवाँ दृश्य

स्थान—राणा राजसिंहके महलका बाहरी हिस्सा

समय—तीसरा पहर

[ऊँचे आसनपर राणा राजसिंह बैठे हैं। सामने बच्चेको गोदमें लिये जसवन्तसिंहकी रानी महामाया घुटने टेके बैठी है। दाहिनी ओर दुर्गादास और कासिम खड़े हैं।]

रानी—राणा, मेरे इस बच्चेको अपने गढ़में स्थान दीजिए। बहुत दिनोंके लिए नहीं राणा, थोड़े ही दिनोंके लिए।

राज०—महामाया, तुम्हारा लड़का मेरा गैर नहीं है। राजपुत्रकी रक्षाके लिए यों गिड़गिड़ानेकी क्या जरूरत है?—दुर्गादास, क्या औरंगजेब इस बच्चेके भी प्राण लेना चाहते हैं?

दुर्गा०—नहीं तो इसके पकड़नेका और क्या उद्देश हो सकता है महाराणा?

रानी—राणाजी, एक लड़का और लड़की—केवल यही संपत्ति लेकर मैं उस दिन दिल्लीसे निकली थी। राहमें लड़की मर गई। अब मेरी

सम्पत्तिमें केवल यही दूध-पीता बच्चा बचा है। मेरे इस सर्वस्व पुत्रकी रक्षा कीजिए महाराणा, ईश्वर आपका भला करेंगे।

राज०—पुत्रके लिए कुछ भी चिंता न करो महामाया, मैं अपने प्राण देकर भी इसकी रक्षा करूँगा।

रानी—राणाजीकी जय हो।

राज०—दुर्गादास, औरंगजेबके अत्याचारकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ती चली जा रही है। उन्होंने हिन्दुओंके ऊपर फिरसे 'जजिया' लगाया है। इसके ऊपर मारवाड़-पति जसवन्तसिंहके परिवारपर ऐसा दारुण अन्याय!—देखूँ, पत्र लिखकर शायद औरंगजेबको ठीक राहपर ला सकूँ।

रानी—पत्र लिखकर? अनुनय-विनय करके? घुटने टेककर? भीख माँगकर? नहीं महाराणा, इस तरह ढीले पड़कर नहीं। अबकी इस बादशाहतको जड़से उखाड़े बिना मेरे कलेजेमें ठंडक नहीं पड़ेगी।

राज०—नहीं महामाया, रक्तकी नदियाँ बहाये बिना यह काम नहीं हो सकता। जब एक राज्य स्थापित हो गया है तब उसे जड़से उखाड़नेकी चेष्टा करना अन्याय है। इसमें हजारों आदमियोंकी व्यर्थ हत्या होगी और देशकी प्रजाको कष्ट मिलेगा।

रानी—अपने देशमें दूसरी जातिके राज्यकी रक्षा?—यही क्या क्षत्रियोंका धर्म है?

राज०—क्षत्रियोंका धर्म केवल मार-काट करना ही नहीं है। मरने-मारनेकी विद्या कोई ऊँचे दर्जेकी विद्या नहीं है। किसी आर्त्तकी रक्षा या अपनी रक्षाके अलावा और किसी उद्देश्यसे मार-काट करनेका नाम हत्या है। (इसके बाद कासिमकी ओर देखकर) यह कौन है?

दुर्गादास—यह कासिमउल्ला है। मेरा पुराना मित्र है। इसने अपनी जानकी पर्वा न करके हमारे राजकुँअरकी रक्षा की है।

कासिम—राणासाहब, मैं इन लोगोंका पुराना नमकख्वार हूँ। सरदारने (दुर्गादासने) एक दफा बड़ी आफतसे मुझको बचाया था, तबसे मैं इन्हींका गुलाम हूँ।

राजसिंह—दुर्गादास, कासिम भी तो मुसलमान है!

कासिम—महाराणा, हमारी जातको बुरा न कहें। हमारी जात खराब नहीं है। हम सब हो सकते हैं, पर नमकहराम नहीं।

राज०—नहीं कासिम, मैं तुम्हारी जातिकी निन्दा नहीं करता; किन्तु बादशाहके साथ तुम्हारी तुलना करता हूँ। बादशाह इस छोटे बच्चेकी जान लेना चाहते हैं—और तुम—

कासिम—आहा, जरा देखो तो, कैसा सुन्दर बच्चा है! अभी-तक आँखें नहीं खुलीं।—आहा, बच्चेने सर्दी और धूपमें बड़ा कष्ट पाया है। बेटा!—हूँ—अब टुकर टुकर देखने लगे! आहा! आँखें क्या हैं, नीले कमल हैं!

राज०—औरंगजेब, तुम दिल्लीके सिंहासनपर बैठे एक निरीह बालककी हत्या करनेके लिए व्यग्र हो रहे हो, और तुम्हारी ही जातिका यह कासिम उसे प्राण देकर भी बचानेके लिए तैयार है!—ईश्वरकी दृष्टिमें कौन बड़ा है औरंगज़ेब?

रानी—राणा, मैं इस भारी अत्याचारका बदला लूँगी!—इसका बदला चुकानेके लिए ही मैं उस दिन और स्त्रियोंके साथ नहीं जल मरी। इसीके लिए अबतक ज़िन्दा हूँ।—आप केवल इस बच्चेकी रक्षा कीजिए।

राज०—मैं कह चुका हूँ, इसके लिए कोई चिन्ता नहीं है महा माया, तुम अपने लड़केको लेकर यहाँ बेखटके रहो।

रानी—नहीं राणा, मैं यहाँ नहीं रहूँगी। अब यह मेरा घर नहीं है। मैं अपने स्वर्गवासी स्वामीके राज्यको लौट जाऊँगी। संपत्ति और विपत्तिमें, सुख और दुःखमें, शान्ति और अशान्तिमें, जीवन और मरणमें, स्वामीका घर ही स्त्रीका घर है; पिताका घर नहीं। मैं मारवाड़ चली जाऊँगी।

राज०—किन्तु वहाँ तो अभी तुम बेखटके नहीं रह सकतीं बहिन!

रानी०—बेखटके? मैं क्या यहाँ अपने लिए बेखटके जगह खोजने आई हूँ? नहीं राणा, मैं उसे नहीं खोजती। मैं अब आपत्तिको खोजती हूँ। (आपत्तिकी गोदमें मैं पली हूँ, भूकम्पमें मेरा जन्म हुआ है, तूफ़ानमें मेरा घर है, प्रलयके बादलोंमें मेरी सेज है)।—विपत्ति!—विपत्तिको तो मैंने अपनी सखी बना लिया है राणा! मुझे अब और क्या विपत्ति होगी? पति मारा गया, पुत्र मारा गया, सर्वस्व लुट गया—अब और क्या विपत्ति होगी? मेरे लिए अब एक ही विपत्ति और हो सकती है—इस बच्चेकी हत्या। इसकी रक्षा कीजिए। राणा! और कुछ न चाहिए, इसकी रक्षा कीजिए! मैं मारवाड़ जाऊँगी और आग सुलगाऊँगी—आग! ऐसी आग सुलगाऊँगी, जिसमें औरंगज़ेब क्या चीज है, मुगलोंका सारा राज्य जल जायगा और खाकमें मिलकर उड़ जायगा!

(पर्दा गिरता है)

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान-- दिल्लीके महलके भीतरका बाग

समय—संध्याकाल

[औरंगजेबकी पोती—अकबर शाहजादेकी लड़की—रजिया अकेले इधर उधर गाती हुई टहलती है ।]

हे दिनमणि, तुम अपनी सारी गरिमा लेकर चले कहाँ ?
अजी ले चलो साथ मुझे भी, जाते हो जिस जगह वहाँ ॥
अंधकार हो जब, तब जगमें, रहना चाहे कौन भला ?
जो चाहे सो पड़ा रहे, मैं रहना चाहूँ नहीं यहाँ ॥
सागरमें तूफान-बीच आशाकी तूँबी बाँध हिये ।
पड़े रहें वे जो जानें जीना ही सुख है बड़ा यहाँ ॥
जबतक जीवन रहे, रहूँ मैं सुखसे, बस अभिलाष यही ।
सुखका समय समाप्त हुए पर, मैं चल दूँ सब छोड़ यहाँ ॥

[पासके एक मौलसिरीके पेड़पर एक कोयलका शब्द और रजियाका एकाग्र होकर उसे सुनना । इसी समय गुलनारका प्रवेश ।]

गुल०—रजिया !

रजिया—चुप रहो !—कोयल बोल रही है ।

गुल०—कैसी पागल लड़की है ! कोयलकी आवाज़ क्या और कभी नहीं सुनी ?

रजिया—सुनी क्यों नहीं ? लेकिन सुन चुकी हूँ, इसलिए क्या फिर न सुनना चाहिए ?—यह सुनो !—फिर—चुप हो रही ! क्यों

अम्मीजान, यह दुनिया अगर एक कभी न थमनेवाली 'तान' होती तो अच्छा होता न ?

गुल०—अच्छा होता !—ऐसा होता तो नाकमें दम होता। एक बात भी कहनेका मौका न मिलता।

रजिया—बात !—बातके मारे ही नाकमें दम है अम्मीजान, और फिर उसके समझनेमें तो और भी आफत है ! हरएक बातके पीछे उसके 'माने' लगे हैं। क्या कहूँ, वगैर 'माने' दो कदम भी आगे बढ़ना गैरसुमकिन है। बातके साथ ही साथ 'माने' घूमते हैं।

गुल०—और गाना ?

रजिया—'माने' लगाना—समझना बड़ा कठिन है। वे सिर्फ एक उदासी मनमें ला देते हैं। उनका समझना सहल नहीं है। यही जैसे 'बेला, चमेली, चंपा, नेवारी,।' इसके माने अच्छी तरह समझमें आते हैं—क्यों न ?—बेला, चमेली, चंपा, नेवारी, ये चार फूल। लेकिन (विकृत स्वरसे गलेबाजी करके) 'बेला, चमेली, चंपा, नेवारी'—इसके माने लगाओ !

गुल०—बेशक—इसके माने लगाना मुश्किल है। बहुत ही अच्छी तान है !

रजिया—नहीं अम्मीजान, तुमको गाना बिल्कुल पसंद नहीं, यह मैं जानती हूँ। लेकिन मैं गानेकी तानमें डूब रही हूँ, मगन हूँ, सराबोर हूँ। (स्वरमें गुनगुनाकर) 'बेला-चमेली-चंपा-नेवारी।'

गुल०—रजिया, तूने गाना किससे सीखा ?

रजिया—अब्बाजानके उस्तादसे। अब्बाजानको गाना गाने और सुननेका बड़ा शौक है। अब्बाजानने खुद भी कुछ गाने बनाये हैं और

उस्तादजीने उसके सुर ठीक कर दिये हैं। अब्बाजानको पुरबी रागिनी बहुत पसंद है। बहुत ही मीठी रागिनी है। (पुरबीके सुरोंमें) ' तारे ना तूम तूम तूम ना दे रे तूम '—वाह कैसी मीठी रागिनी है।

गुल०—मुरब्बेसे भी ?

रजिया—अम्मीजान, तुम तो एकदम जानवर हो ! एक गधेमें जितनी सुरकी जानकारी होती है—उतनी भी तुममें नहीं है !—अच्छा अम्मीजान, ये गधे क्या बेसुरे रेंकते हैं ? नीचेके गांधारसे एकदम ऊपरका कोमल ऋषभ होता है।

गुल०—होगा !

रजिया—अच्छा अम्मीजान, कोयलका सुर इतना मीठा क्यों है, और कौएकी आवाज़ इतनी कर्कश क्यों है ? मुझे जान पड़ता है, कोयलके सुरसे ही गाना ईजाद हुआ है। सा, रे, गा, मा, पा,—ठीक कोयलका सुर है।—यह सुनो—कु, कु, कू, कू, कू,—ठीक कोयलका सुर !

गुल०—बंगालमें रहनेसे तुझे गानेकी सनक सवार हो गई है। बंगालमें शायद गाने-बजानेका बड़ा चलन है ?

रजिया—हाँ। मगर बंगाली लोग ' कीर्तन ' बहुत गाते हैं। मैंने एक कीर्तन सीखा है—सुनोगी ? सुनो—

बँधुया कि आर कहिव आमि !
जीवन मरने, जनमे जनमे, प्राननाथ हइयो तुमि।
तोमार चरने आमार पराने लागिल प्रेमेर फासी,
मन प्रान दिये सब समर्पिये निश्चय हईनू दासी।
ए कुले ओ कुले दुकुले गोकुले के आर आमार आछे,
राधा बोले आर शुधाईते नाम दाँडाबे आमार काछे।

—इसके बाद—भूल गई।—अच्छा है! क्यों ?—अच्छा अम्मीजान, दादाजी गानेसे इतने चिढ़ते क्यों हैं ?—वे मुझे खूब प्यार करते हैं। लेकिन अगर कभी एक तान ले लेती हूँ—तो—मेरी तरफ देखकर कहते हैं—" ऐं! " और सिर हिला देते हैं।

गुल०—तेरे दादाजान तुझे बहुत प्यार करते हैं ?

रजिया—ओह ! बहुत प्यार करते हैं ! (सुरसे) " बँधुया—" तुमको प्यार करते हैं ?

गुल०—मुझको ?—अपने दादाजानसे जरा पूछकर देखना।

रजिया—(सुरसे) " कि आर कहिब आमि—" तुम जो करनेको कहती हो वही करते हैं ?

गुल०—करते हैं। देखती नहीं है कि मेरे वास्ते एक जंग ही ठन गया है।

रजिया—जंग !—जंग किसे कहते हैं अम्मीजान ?

गुल०—लड़ाईको।

रजिया—ओह !—एक आदमी एक तलवार लेता है, और दूसरा आदमी दूसरी तलवार लेता है। उसके बाद दोनों आदमी बाजेकी तालपर नाचते और घूमते हैं—यह मैंने बंगालमें देखा है। लड़ाई किसके साथ होगी अम्मीजान ?

गुल०—मेवाड़के साथ।

रजिया—मेवाड़ मर्द है या औरत ?

गुल०—दूर पगली लड़की !—मेवाड़ एक मुल्क है।

रजिया—बापरे! एक मुल्कके साथ लड़ाई होगी !—क्यों अम्मीजान, लड़ाई क्यों होगी ?

गुल०—एक रानीको पकड़कर लानेके लिए।

रजिया—तुमने शायद दादाजानसे यही कहा है ?

गुल०—हाँ !

रजिया—उस रानीको पकड़ मँगाकर क्या करोगी ? उसे प्यार करोगी ?

गुल०—उसके मुर्देका जुलूस निकालूँगी ।

रजिया—उसके जीतेजी ? मैंने तो सुना है, मरनेपर मुर्देका जुलूस निकलता है ।—लो, वे दादाजान और अब्बाजान आ रहे हैं ।—मजा देखोगी ?

[औरंगजेब और अकबरका प्रवेश]

रजिया—(कीर्तनके स्वरमें) " बँधुया—"

औरंग०—ऐं—रजिया !—फिर !

रजिया—लो अम्मीजान, यह सुनो – हाः हाः हाः—

(हँसते हँसते भाग जाती है ।)

औरंग०—अकबर, मैंने तुमको बंगाल भेजा था सल्तनतका काम-काज सीखनेके लिए; लेकिन मैं देखता हूँ, तुम नाच-गानमें ही मश-गूल रहते हो । इस लड़की तकको गाना सिखा दिया है !—मुझे मालूम न था कि तुम ऐसे नालायक हो ।

गुल०—सच बात है । लड़की गानेके सिवा और बात ही नहीं करती । दिनरात गुनगुनाया करती है । नाकमें दम कर रक्खा है !

औरंग०—उसकी जिन्दगी बरबाद किये देते हो । खैर यह फिर देखा जायगा ।—इस वक्त अकबर, तुम मेवाड़की लड़ाईमें जाओ । मैं तुम्हारी मातहतीमें ५०,००० फौज भेजता हूँ । मेवाड़पर चढ़ाई करो ।

अकबर—जो हुक्म ।

औरंग०—मैंने सुना है, तुम बहुत ही सुस्त, शौकीन और ऐयाश हो गये हो। तुम्हें कुछ ज़िन्दगीकी सख्तियाँ झेलनेकी जरूरत है। मेवाड़की लड़ाईमें जानेके लिए ही मैंने तुमको नहीं बुला भेजा है, तुम्हारा सुधार करनेके लिए ही खासकर बुलाया है। जाओ।—तैयारी करो। सिपहसालार दिलेरखाँको तुम्हारी मददके लिए भेजता हूँ। मैं और आजम दोनों 'दोबारी' में ठहरकर तुम्हारी फतहकी राह देखेंगे। —जाओ।　　(अकबरका चुपचाप प्रस्थान)

औरंग०—गुलनार, तुम्हारे कहनेसे, तुम्हें खुश करनेके लिए, आज मैं एक बड़ी भारी लड़ाई छेड़ रहा हूँ।

गुल०—भारी लड़ाई! एक छोटेसे मुल्क मेवाड़से भिड़ना बड़ी भारी लड़ाई है? मैं तो समझती हूँ, हिन्दोस्तानके शाहंशाह औरंगजेबके लिए यह एक बहुत मामूली बात है।

औरंग०—यह बात नहीं है। जिस दिन ढाई सौ राजपूत पाँच हजार मुगलोंकी फौजको रौंधकर चले गये, उस दिन मैंने जाना कि राजपूतोंकी जात बड़ी दिलेर है—राजपूतोंकी ऐसी हिम्मत और बहादुरी दूसरी कौममें नहीं है। इसीसे मैंने इस चढ़ाईके लिए बंगालसे शाहज़ादा अकबर और काबुलसे शाहज़ादा आज़मको बुला भेजा है मेवाड़पर फतह पाना बहुत ही सहल और आसानीसे हो जानेवाला काम नहीं है।

गुल०—मैं मेवाड़को जीतना नहीं चाहती। मैं जसवन्तकी रानीको चाहती हूँ, और कुछ नहीं। उससे एक दफा मुलाकात करना चाहती हूँ।

औरंग०—अबकी जरूर मुलाकात होगी।—भीतर चलो गुलनार, पानी पड़ने लगा।　　(दोनोंका प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—आबू पहाड़की एक कन्दरा

समय—दोपहर

[दुर्गादास और दो राठौड़—शिवसिंह और मुकुन्दसिंह]

दुर्गा०—शिवसिंह और मुकुन्दसिंह, मैं कुँअरको तुम्हारी देख-रेखमें छोड़ जाता हूँ। इस स्थानके अस्तित्वकी खबर किसीको न होने पावे।

दोनों०—ऐसा ही होगा सेनापति।

दुर्गा०—बादशाहने बड़ी भारी फौज लेकर मेवाड़पर चढ़ाई की है। कुँअरको अब उदयपुरमें रखना ठीक न समझकर राणाजीकी आज्ञाके अनुसार यहाँ ले आया हूँ।

मुकुन्द०—बादशाहने मेवाड़पर चढ़ाई क्यों की है?

दुर्गा०—मेवाड़ने जोधपुरकी रानी और राजकुमारको आश्रय दिया है; बस यह इसका प्रधान कारण है। यह भी सुना है कि औरंगजेबके अत्याचारका—खास कर हिन्दुओंके ऊपर जजिया कर लगानेका—प्रतिवाद करके राणाने जो पत्र लिखा था, वह पत्र ही इसका कारण है। पर वह एक बहाना है। उस पत्रकी लिखावटमें तेज और निडरपनकी झलक रहनेपर भी नम्रता और सरलताकी मात्रा यथेष्ट थी। उससे बादशाहके नाराज होनेका कोई कारण न था। मैंने उस पत्रको पढ़ा है।

शिव०—आप इस युद्धमें जा रहे हैं?

दुर्गा०—मेरे प्रभुको आश्रय देनेके कारण ही यह युद्ध ठना है। मेरे यहाँ निश्चिन्त होकर बैठ रहनेसे काम नहीं चल सकता शिवसिंह, तुम दोनों इस किलेमें रहो। यहाँसे कहीं न जाना। यह किला बहुत ही एकान्त और

बहुत ही गुप्त है। यहाँ किसी तरहका खटका नहीं। तब भी इस किलेमें पहरा देनेके लिए २०० सिपाही छोड़े जाता हूँ। अगर किसी विपत्तिकी संभावना भी हो, तो उसी घड़ी मुझे खबर देना।

मुकुन्द०—बादशाह क्या मेवाड़पर चढ़ाई करनेके लिए रवाना हो चुके हैं?

दुर्गा०—हाँ। बादशाहकी फौज टीड़ी-दलकी तरह मेवाड़-राज्यमें छाई हुई है। चित्तौर, मण्डलगढ़, मन्दसोर और जीड़नके किलोंको बादशाहने ले लिया है। राणा अपनी सब सेना पहाड़ी जगहपर ले आये हैं।

शिव०—हमारी महारानी कहाँ हैं?

दुर्गा०—मारवाड़में। उन्होंने सेनापति गोपीनाथकी अध्यक्षतामें १०,००० राठौर-सेना मेवाड़ भेजी है! खुद और भी सेना जमा करके अपने साथ लिये आ रही हैं।—अच्छा जाओ, तुम लोग भोजन आदि करो।　　(मुकुन्दसिंह और शिवसिंहका प्रस्थान)

दुर्गा०—(आप-ही-आप) आज मुट्ठीभर राजपूत-सेना लेकर मुगल-सेनाके सागरमें उतरता हूँ। ईश्वर जाने, इसका परिणाम क्या होगा। एक आशा यही है कि मेवाड़ और मारवाड़ आज मिलकर—प्राणोंकी पर्वा न करके—इस युद्धके लिए तैयार हैं। चारों ओर घिरी हुई घन-घटाके अन्धकारमें इतनी ही एक ज्योतिकी क्षीण रेखा देख पड़ती है।—यदि इसके साथ ही एक बार मराठा-शक्तिकी सहायता पाता, इस बिखरी हुई हिन्दुओंकी शक्तिको यदि एक बार जमा कर पाता!—कैसी अद्भुत जाति है! तीस वर्षके बीचमें एक जाति संगठित हो गई!

[कासिमका प्रवेश]

दुर्गा०—क्यों कासिम, कुँअर कहाँ हैं ?

कासिम—अभीतक मेरे साथ खेल रहा था। अभी सो गया है। धायके पास छोड़ आया हूँ। अब मैं नहाने-खाने जाऊँ न ?

दुर्गा—(हँसकर) हाँ, तुम तो नहाकर खानेके बारेमें हिन्दुओंसे भी कट्टर हो। जाओ, नहाओ-खाओ जाकर—देर हुई है।

कासिम—और आप न नहाएँ-खायँगे ?

दुर्गा०—नहीं, आज मेरी तबीयत अच्छी नहीं है।

कासिम—यही तो आपमें ऐब है। नहीं तो आप आदमी बुरे नहीं हैं।—यही तो ऐब है !

दुर्गा०—हाँ, यह मुझमें दोष है !

कासिम—मेरी बीबीमें भी यह ऐब था। आज खाँसी है, कल बुखार है, परसों दर्द है। मगर मुझमें यह बात नहीं है। बुखार आ गया तो आ गया, नहीं तो अच्छा खासा रहता हूँ। खाता-पीता हूँ—और मजेमें काम करता हूँ।

दुर्गा०—तुम्हारी स्त्रीकी मौत कैसे हुई कासिम !

कासिम—अरे, कौन जाने ! एक दिन सबेरे उठकर देखा, मरी पड़ी है। हकीमने कहा, कलेजेकी बीमारी थी।

दुर्गा०—और तुम्हारा लड़का ?

कासिम—मेरे लड़केकी बात न कहिए हुजूर। बहुत ही खूबसूरत और मोटा-ताजा था। उस देखकर भूख-प्यास हर जाती थी ! उसका चलना फिरना अँधेरेमें 'दिये' के समान, बोलचाल बाँसुरीकी तानके समान और हँसी नदीकी लहरोंके समान जान पड़ती थी। ठीक अपने राजकुमारके ऐसा था ! हाँ, रंग उसका इतना गोरा न था।

एक दिन मैं कामसे लौटकर घर आया, तो देखा, बच्चा पड़ा हुआ है। बदन-भरमें जैसे किसीने स्याही फेर दी थी। पूछा क्या हुआ। कुछ जवाब नहीं मिला। चाचीको बुलाया, वह देखकर रोने लगी। हकीमको बुलाया, वह सिर हिलाकर चला गया।

दुर्गा०—क्या हुआ था?

कासिम—अरे यही तो मालूम नहीं हुआ। उसके बाद ही मुल्कमें एक तरहकी बीमारी फैल गई। उसे लोग काला बुखार कहते थे। धड़ा-धड़ लोग मरने लगे। बदनसीबीसे मैं नहीं मरा। (आँसू पोंछता है।)

दुर्गा०—संसारका यही नियम है कासिम,—तुम क्या करो। जाओ—नहाओ-खाओ।

कासिम—जाता हूँ।

दुर्गा०—इस मुसलमानके साथ बातचीत करनेसे मन पवित्र होता है, सीधी सहज राहमें चलना आसान हो जाता है, ईश्वरकी भक्ति बढ़ती है।

तीसरा दृश्य

स्थान—जयसिंहकी स्त्री कमलादेवीके सोनेके कमरेका बरामदा।

समय—रात

[कमला दीवारसे लगी हुई बैठी है। पास थोड़ी दूरपर हथेलीपर गाल रक्खे, आधे लेटे हुए जयसिंह एकटक कमलाकी ओर निहार रहे हैं।]

[अचानक सरस्वतीका प्रवेश]

सरस्वती—आप यहाँ हैं स्वामी? मैं आपको बड़ी देरसे खोजती फिर रही हूँ।

जयसिंह—क्यों सरस्वती ?

कमला—तो अब तुम पहली रानीसे बातचीत करो—मैं जाती हूँ।

(प्रस्थान)

जयसिंह—नहीं, जाओ नहीं सुनो !

(उठकर खड़े हो जाना)

सरस्वती—मैं तुम्हारे सुखमें विघ्न डालने नहीं आई स्वामी !—कुछ विशेष प्रयोजन है।

जयसिंह—क्या प्रयोजन है ?

सरस्वती—स्वामीका स्त्रीसे क्या यही उचित प्रश्न है, प्राणनाथ ? खैर, उस बातको जाने दो। मैं इस समय तुमसे जबर्दस्ती प्यार उगाहने नहीं आई हूँ—यद्यपि उसपर कमलाकी तरह मेरा भी दावा है। जाने दो—जो गया वह गया।

जयसिंह—क्या प्रयोजन है ?

सरस्वती—बड़ी जल्दी है ! अच्छा सुनो। मुगलोंने मेवाड़पर चढ़ाई की है, सुना है ?

जयसिंह—नहीं।

सरस्वती—तो तुम्हारे पिताने तुमको यह खबर देनेकी जरूरत नहीं समझी।

जयसिंह—यह उन्होंने समझदारीका काम किया।

सरस्वती—उन्होंने इस युद्धमें शामिल होनेके लिए बड़े राजकुमारको जोधपुरसे बुला भेजा है।

जयसिंह—अच्छा।—फिर ?

सरस्वती—यह सुनकर तुमको लज्जा नहीं आती ? तुम क्षत्रिय हो, राजपूत हो, मेवाड़के होनेवाले राणा हो ! राणाने तुमको मेवाड़पर

चढ़ाई होनेकी खबर भी नहीं दी, और बड़े लड़केको इतनी दूर जोधपुरसे बुला भेजा। इससे क्या प्रकट होता है स्वामी ?

जयसिंह—क्या प्रकट होता है ?

सरस्वती—इससे प्रकट होता है कि राणा तुमको कायर और नालायक समझते हैं। जोधपुरसे दुर्गादास, रूपनगरसे विक्रम सोलंकी, राठौर-वीर गोपीनाथ—सब मेवाड़की सहायता करनेके लिए आये हैं। वे सब इस समय राणाके सलाह-घरमें हैं। और तुम मेवाड़के होने-वाले राणा होकर भी रंग-महलमें बैठे हो। सुनकर लाज नहीं लगती ? खूनमें जोश नहीं आता ? अपनेको धिःकार देनेकी इच्छा नहीं होती ? क्या ! चुप रह गये !

जयसिंह—सब समझता हूँ। किन्तु सरस्वती,—किसीने जैसे मेरे जोशको मिटा दिया है—मेरे खूनको ठंडा कर दिया है। मुझे स्त्रीसे भी अधम बना दिया है।

सरस्वती—अगर इतनी समझ बाकी है, तो अब भी आशा है। स्वामी, कमलाको चाहो, यह अनुचित नहीं है।—लेकिन जब विजातीय शत्रुओंकी सेनाने आकर देशको घेर लिया है, शत्रु द्वारपर है, कठोर कर्त्तव्य सामने है, तब अन्तःपुरमें पड़ा रहना क्षत्रियका काम नहीं।

जयसिंह—सच है सरस्वती, तुम सदासे उचित, सत्य, संगत बात कहती आ रही हो—पर उसे मैं सुनना नहीं चाहता। कर्त्तव्यके मार्गको पहचानता हूँ, मगर उस राहमें चल नहीं सकता।

सरस्वती—अगर कर्त्तव्यकी राहको पहचानते हो, तो उठो, एक बार प्राणपणसे चेष्टा करके इस विलासको फटे-पुराने कपड़ेकी तरह

हृदयसे दूर कर दो स्वामी ! कर्तव्य-पथपर चलना सहज जान पड़ेगा। मेरे कहनेसे एक बार कर्त्तव्यकी ओर बढ़ो, वह आप हाथ बढ़ाकर तुमको अपनी ओर खींच लेगा—वह तुमको अपने घेरेमें रखकर तुम्हारी रक्षा करेगा। कर्त्तव्यको तुम जितना कठिन समझते हो उतना कठिन वह नहीं है। एक बार हिम्मत करके उद्योगके सहारे अपने पैरों उठकर खड़े हो जाओ स्वामी !

जयसिंह—तुम ठीक कहती हो सरस्वती, अच्छी बात है। एक बार चेष्टा करके देखूँ।—क्या करनेको कहती हो सरस्वती ?

सरस्वती—यही मेरे स्वामीके योग्य बात है।—तो सुनो प्राण-नाथ, आओ—वीरोंका वेष धारण करो। उसके बाद अपने पिताके पास जाओ। वहाँ जाकर अपने पितासे कहो—"इस युद्धमें मुझे किसीने बुलाया नहीं; मैं आपसे आया हूँ।" तुम्हारे पिता गर्व और स्नेहके साथ वीरपुत्र समझकर तुमको गलेसे लगा लेंगे, सारा मेवाड़ अभिमानके साथ कहेगा—यही तो हमारे होनहार राणा हैं। सारा राजपूताना सिर ऊँचा करके उस दृश्यको देखेगा।—स्वामी, धिक्कारके साथ बहुत दिन जीनकी अपेक्षा पूज्य और प्रशंसनीय होकर एक दिनका जीना भी सुखदायक है।

जयसिंह—सरस्वती, इसी घड़ी जाता हूँ।

सरस्वती—हाँ, इसी घड़ी चलो। मैं अपने हाथसे तुमको फौजी पोशाक पहना दूँ, चलो। (जयसिंहका प्रस्थान)

सरस्वती—जाओ स्वामी, इस युद्धमें मेरा सच्चा स्नेह अभेद्य कवचकी तरह तुम्हारी रक्षा करेगा। शत्रुकी तलवार तुम्हें छू भी न सकेगी।

(पीछे पीछे सरस्वतीका भी प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान—उदयपुर—राणा जयसिंहका सलाह-घर

समय—आधी रात

[राणा राजसिंह, महारानी महामाया, दुर्गादास और अन्यान्य सामन्त बैठे हैं।]

विक्रम सोलंकी—हम लोग सन्मुख-युद्ध करके मुगल-सेनापर धावा करेंगे।

राजसिंह—यह तो ठीक नहीं जान पड़ता। खुले मैदानमें, असंख्य मुगल-सेनाके सामने खड़ा होना युक्तिसंगत नहीं है।

गोपीनाथ—मैं कहता हूँ—थोड़ी सेनाकी अनेक टुकड़ियाँ बनाई जायँ। वे मुगलोंकी सेनाको परेशान करके आगे बढ़ने न दें।

राजसिंह—तुम्हारी क्या सलाह है गरीबदास? तुम इस पहाड़ी जगहकी हरएक राह, उपत्यका और जंगलको जानते हो।—तुम्हारी क्या राय है?

गरीबदास—मैं कहता हूँ, मुगलोंको इस पहाड़ी राहमें आने दो। हम लोग उन्हें रोकनेकी कुछ भी चेष्टा न करें। केवल कौशलसे उनको सबसे तंग पहाड़ी दर्रेमें ले आयें। वहाँ मोर्चेबन्दी करना उनके लिये कठिन होगा। पहाड़ी तंग राहमें शत्रु-सेनाकी शृंखला टूट जानेपर हम लोग उनपर आक्रमण करेंगे।

दुर्गादास—यह बहुत ही अच्छा उपाय है राणासाहब, मुगलोंके साथ केवल आज ही नहीं—बहुत वर्षोंतक अभी युद्ध करना होगा,—जहाँ तक हो, हमें इसपर दृष्टि रखनी होगी कि हमारी शक्तिका अपव्यय न हो।

गोपीनाथ—इस सलाहको मैं भी पसन्द करता हूँ।

विक्रम—बहुत ठीक है। शत्रु वहाँपर दल बाँधनेका सुयोग न पा सकेंगे।

राजसिंह—सबकी क्या यही सलाह है? तुम क्या कहती हो महामाया?

रानी—जो सबकी सलाह है, वही मेरी है। लेकिन बादशाह खुद इस युद्धमें नहीं आये?

राजसिंह—नहीं, वह और आज़म 'दोबारी' में हैं। बादशाहके पुत्र अकबर उदयपुर आये हैं,—यही ठीक खबर है न दुर्गादास?

दुर्गादास—हाँ महाराणा, शत्रुकी सेना तीन भागोंमें बँटी हुई है। एक अकबरकी मातहतीमें उदयपुरकी राहमें, एक दिलेरखाँकी मातहतीमें 'दासुरी' की राहमें, और एक बादशाहकी मातहतीमें 'दोबारी'में।

रानी—मैं कहती हूँ, हम लोग सेनासहित बादशाहपर धावा कर दें।

राज०—नहीं, ऐसा करनेसे अकबरकी सेना पीछे रह जायगी। यह ठीक नहीं। क्यों दुर्गादास?

दुर्गा०—हाँ, यह ठीक न होगा।

राज०—तो फिर गरीबदासकी सलाह सबको पसन्द है?

सब—हाँ, सबको पसन्द है।

राज०—अच्छी बात है। अब इस सम्मिलित सेनाका सेनापति किसे बनाना चाहिए?

गरीब०—क्यों, दुर्गादासको।

राज०—क्यों, सबकी सलाह है?

सब—(रानी और दुर्गादासके सिवा) जी हाँ।

राज०—तो दुर्गादास, मैं तुमको इस सम्मिलित राजपूत-सेनाका सेनापति बनाता हूँ।

दुर्गा०—मैं आपके दिये हुए इस सम्मानको सादर ग्रहण करता हूँ। वह देखिए, कुमार भीमसिंह भी आ गये।

[भीमसिंह प्रवेश करके राणाको प्रणाम और सबसे यथोचित शिष्टाचार करते हैं।]

राज०—आओ बेटा—तुमको शायद 'आओ' कहनेका भी मुझे अधिकार नहीं है।

भीम०—क्यों पिताजी ?

राज०—मैंने तुमको निकाल देनेकी नालायकी की है।

भीम०—नहीं पिताजी, मैं अपनी इच्छासे निकल गया हूँ !

राज०—मुझसे तुम नाराज नहीं हो भीमसिंह ?

भीम०—आपसे नाराज ? आपकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए मैं प्राण तक दे सकता हूँ। भगवान् श्रीरामचंद्र पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिए बनवासी हुए थे। मैं एक तुच्छ मनुष्य हूँ। किन्तु फिर भी मैं वही क्षत्रिय होनेका गर्व रखता हूँ।

रानी—कुँअर तुमको आज तुम्हारे पिताने बुलाया है जन्मभूमिकी रक्षा करनेके लिए !

भीम०—यह मेरे लिए गौरवकी बात है महारानी !

विक्रम०—तुम अपनी जन्मभूमिको भूले नहीं भीमसिंह ?

भीम०—जन्मभूमिको भूलूँगा ?—विक्रमसिंहजी, ये जो कई वर्ष मुझे विदेशमें बीते हैं, उनमें खाते-पीते सोते-जागते सदा यह धूम-धूसर पहाड़ोंसे परिपूर्ण मेवाड़-भूमि मेरी आँखोंके आगे नाचती रही है। आज

इसी जन्मभूमिमें आते समय राहमें उन चिरपरिचित जंगली राहों, उपत्यकाओं और पर्वतमालाओंको देखकर मेरी आँखोंमें आँसू डबडबा आये; आवेशके मारे गला भर आया।

रानी०—(स्वगत) ठीक राणा राजसिंहका प्रतिबिम्ब है।

[हथियारबन्द जयसिंहका प्रवेश]

राज०—कौन ? जयसिंह ?

जय०—हाँ पिताजी, मैं हूँ। पिताजीने मुझे इस युद्धमें सम्मिलित होनेके लिए नहीं बुलाया।—मैं आप ही आया हूँ!

राज०—(घड़ीभर बहुत ही विस्मयसे जयसिंहकी ओर देखकर) सच जयसिंह ? निश्चय करके यह बात कह रहे हो ?

जय०—हाँ पिताजी, आज मेवाड़पर संकट है। मैं मेवाड़का होनहार राणा हूँ। इस समय मेरा निश्चिन्त होकर घरमें बैठ रहना नहीं सोहता।

भीम०—चिरजीवी होओ भाई, यही तो तुम्हारे योग्य बात है।

राज०—भीमसिंहको प्रणाम करो जयसिंह!

(जयसिंह भीमसिंहको प्रणाम करते हैं और भीमसिंह उनको गलेसे लगाते हैं।)

राज०—दुर्गादास, अपने इन दोनों पुत्रोंको तुम्हें सौंपता हूँ। ये तुम्हारी मातहतीमें युद्ध करेंगे।

दुर्गादास०—यह मेरे लिए बड़े ही सम्मानकी बात है राणासाहब!

राज०—अच्छा तो अब आज सभा विसर्जन करो। तुम सब लोग जाओ।—जाओ बहिन, महलमें जाओ।

(राजसिंह और राजकुमारोंके सिवा सबका प्रस्थान)

राज०—(कोमल स्वरसे) भीम,

भीम०—पिताजी,

(राजसिंह चुप रह गये)

भीम०—समझा पिताजी, मैं उस प्रतिज्ञाको भूला नहीं हूँ। मैं इसी घड़ी मेवाड़से बाहर जाता हूँ। अच्छा चलता हूँ पिताजी, चलता हूँ भाई!

(भीमसिंह राणाको प्रणाम और जयसिंहको आशीर्वाद करके शीघ्रताके साथ चल देते हैं।)

राजसिंह—(घड़ीभर चुप रहकर) जयसिंह,—हो सके तो इस भाईके माफिक बनो।—जाओ बेटा, सोओ।

(जयसिंहका प्रस्थान)

राजसिंह—(आप-ही-आप) भीम! भीम! मुझे तुम प्यार नहीं करते। जन्मभूमिकी बात कहते कहते तुम्हारा गला भर आया और मुझे केवल एक सूखा प्रणाम!—अपने दोषसे ऐसे वीर पुत्रको मैंने खो दिया।　　(प्रस्थान)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—चित्तौरके पासका जंगल; मुगलोंकी छावनी।

समय—तीसरा पहर

[सम्राट् औरंगजेब उत्तेजित भावसे खड़े हैं। सामने दिलेरखाँ और शाहजादा आजम खड़े हैं। पास ही श्यामसिंह खड़े हैं।]

औरंग०—दिलेरखाँ, क्या तुम भी इस लड़ाईमें हार आये?

दिलेर०—हाँ जनाब, सिर्फ हार ही नहीं आया, अपना सब कुछ गवाँ आया।

औरंग०—और शाहजादा अकबर?

दिलेर०—उनके बारेमें जो कुछ सुना है, वह भी बहुत अच्छी खबर नहीं है। वे अरावली पहाड़के दर्रेमें राणा राजसिंहके लड़के जयसिंहके हाथ पड़कर कैद हो गये हैं।

औरंग०—कैद ?—अकबर—हिन्दोस्तानका होनेवाला बादशाह राजपूतके हाथ कैद ?—अबकी मुगलोंकी पूरी बेइज्जती हो गई !

आज़म—(स्वगत) क्या ? हिन्दोस्तानका होनेवाला बादशाह अकबर ?

दिलेर०—अब जहाँपनाह अपनी खबर बतावें, क्या है । जहाँपनाहने ' दोबारी ' छोड़कर चित्तौरके किलेमें पनाह ली है ?

औरंग०—दिलेरखाँ, मुझे राठौर दुर्गादासने पूरी तरहसे शिकस्त दी । इस लड़ाईमें मेरा सब सामान, रसद, ऊँट, हाथी, घोड़े और प्यारी बेगम भी छिन गई ।

दिलेर०—तब तो यह कहिए कि बोझ हलका हो गया जनाब, अब दिल्लीको लौटना उतना मुश्किल न होगा !

औरंग०—दिल्ली लौट जाऊँगा यह बेइज्जती लेकर ? (श्यामसिंहसे) क्यों राजासाहब ?

श्याम०—यह कभी नहीं हो सकता ।

दिलेर०—जैसे आप बेइज्जती लिये जा रहे हैं, वैसे ही बहुतसी चीजें छोड़े भी तो जाते हैं । ऊँट—हाथी—रसद—बेगम । अब तो लौट चलना बहुत ही सहल है ।

औरंग०—इस रंजके वक्त तुम्हारी हँसी अच्छी नहीं लगती दिलेरखाँ!

श्याम०—हाँ सेनापति, हँसीका भी समय होता है ।

दिलेर०—बादशाह सलामत, हँसी मुझे रंजके वक्त ही अच्छी लगती है । रंजके वक्त मेरे मुँहसे हँसीकी बात निकलती भी है ।

औरंग०—मुगलोंकी ऐसी बेइज्जती कभी नहीं हुई – जैसी—

दिलेर०—जैसी आज आपके हाथसे हुई—यह मानता हूँ जहाँपनाह !

औरंग०—मेरे हाथसे या तुम्हारे हाथसे? मुगल-बादशाहतकी बदनसीबी है कि आज मुगल-फौजके सिपहसालार दिलेरखाँ हैं। आज अगर जसवन्तसिंह ज़िन्दा होता—

श्याम०—अगर राजा जसवन्तसिंह जीते होते जहाँपनाह!

दिलेर०—अगर बादशाह सलामत चाहते, तो वे आज जीते रह सकते थे।

औरंग०—क्या तुम समझते हो कि—

दिलेर०—समझता कुछ नहीं हूँ जहाँपनाह!—सब जानता हूँ। जानता हूँ कि हुजूरने अफगानिस्तानमें उनको कत्ल करवा डाला है। इस खूनके जुल्म और बेदर्दीका वैसा असर पहले कभी मेरे दिलपर नहीं पड़ा था जैसा कि उस दिन मुगलोंकी फौजके सामने खुदापर भरोसा करके बेधड़क खड़ी हुई रानीको जान देनेके लिए तैयार देखकर पड़ा। उसी दिन मैंने समझा था जनाब, कि यह जसवन्तसिंहका खून मुगल-बादशाहतको मिटा देगा। अगर जहाँपनाह चाहते, तो वह दिलेर बहादुर दुर्गादास दुश्मन न होकर दोस्त होता, और ये राजपूत—राजा श्यामसिंहके ऐसे अपनी कौमकी और अपनी इज्जत न करनेवाले, अपने मुल्कके दुश्मन, कायर राजपूत नहीं—दुर्गादासके ऐसे सच्चे, सीधे, ऊँचे खयालके बहादुर राजपूत—मुगल-बादशाहतके लिए आँधी न होकर उसको थामनेवाले खंभे होते।

औरंग०—कैसे दिलेरखाँ?

दिलेर०—कैसे? हिन्दोस्तानकी तवारीखके सफे उलटिए। उससे आपको मालूम होगा कि कैसे। मानसिंह, भगवानदास, टोडरमल, वीरबल वगैरह न होते, तो मुगलोंकी बादशाहत यहाँ कायम नहीं हो सकती थी और औरंगजेब भी दिल्लीके तख्तपर बैठ नहीं सकते थे।

जिस जड़को बादशाह अकबर जमा गये हैं उसे आप अंजाममें अपनेको ही नुकसान पहुँचानेवाली अपनी चालसे उखाड़े डाल रहे हैं।

औरंग०—मैं ?

दिलेर०—हाँ आप। जजिया न बाँधा जाता तो न इधर राजपूत एक होते, और न उधर मराठे बिगड़ खड़े होते। राणा राजसिंहने आपकी भलाईके ही लिए यह बात लिखी थी। आप उनकी बात न सुनकर जान-बूझकर, अपने हाथों अपनी बुराईको अपने पास बुला रहे हैं। शाहंशाह, यह याद रखिए कि डरा-धमकाकर इस दिलेर और बहादुर बड़ी कौमपर कोई हुकूमत नहीं कर सकता। ये अपनी खुशीसे अगर किसीके ताबे रहें तो रह सकते हैं। और अगर यह सारी कौम बिगड़ खड़ी हो, तो सिर्फ उसकी गर्म साँसोंसे ही मुगल-बादशाहत उड़ जा सकती है!

औरंग०—मैं इस बारेमें सोचूँगा दिलेरखाँ, मेरे सिरमें दर्द हो रहा है। इस वक्त मैं कुछ सोच नहीं सकता। (प्रस्थान)

दिलेर०—खुदा तुमको समझ दे औरंगजेब!

आजम—(अपने मनमें) अकबर हिन्दोस्तानका बादशाह ?—न होगा,—यह हो नहीं सकता।

दिलेर०—(अपने मनमें) शाहज़ादे आज़मके चेहरेसे तो अच्छा रंग नहीं देख पड़ता! (प्रकट) क्या सोच रहे हो शाहज़ादा साहब ?

आजम—वह बात तुमसे कहनेकी नहीं है दिलेरखाँ!

(प्रस्थान)

दिलेर०—हूँ!—जरूर कोई खास बात है! यह सिर्फ 'दोबारी' की हार नहीं है—शाहजादेके रंग अच्छे नहीं देख पड़ते!

श्यामसिंह—तुम हार आये दिलेरखाँ ?

दिलेर०—(सहसा श्यामसिंहकी ओर फिरकर) हाँ राजासाहब, मैं हार आया। क्यों, आपको बड़ा अफसोस हुआ? राजपूतोंका जीतना आपको अच्छा नहीं लगा?

श्याम०—नहीं, नहीं मैं कहता था कि—

दिलेर०—रहने दीजिए।—या खुदा! तुम्हारी यह अजीब ख़लकत है! जिस कौममें दुर्गादास ऐसे आदमी पैदा होते हैं, उसी कौममें श्यामसिंहके ऐसे भी आदमी पैदा होते हैं!—अच्छा, जनाब सिंहजी, आपका नाम श्यामसिंह न होकर शम्सुज्जोहा होता तो ठीक होता, क्यों न?

(नेपथ्यमें कोलाहल सुन पड़ता है।)

श्याम०—यह कैसा शब्द है? जयके उल्लासकी ध्वनि है!—दुर्गादासने यहाँ आकर लोगोंपर चढ़ाई तो नहीं कर दी?

दिलेर०—भागो राजसाहब, इस पुश्तैनी जानको बचाओ।

श्याम०—नहीं, ये लोग तो 'अल्ला-अल्ला' कहकर चिल्ला रहे हैं—यह हमारी फौज है।

दिलेर०—बेशक आपहीकी फौज है। अगर हमारी फौज होती तो 'हर हर बम' कहकर चिल्लाती।—क्यों न राजासाहब? अच्छा, आपको यह खुशामदका इल्म किसने सिखाया था?

श्याम०—क्यों?

दिलेर०—वह जरूर कोई बड़ा उस्ताद आदमी रहा होगा। कैसा अच्छा फायदेका इल्म सिखाया है!—वाह!

[शाहज़ादा अकबरका प्रवेश]

श्याम०—यह लो शाहज़ादे साहब तो आ गये!

दिलेर०—(देखकर) हाँ, शाहज़ादे साहब ही तो हैं। बन्दगी

शाहज़ादा,—मैंने तो सुना था, आपको दुश्मनोंने कैद कर लिया—क्या वह खबर झूठ थी ?

श्याम०—मैं जानता हूँ, झूठ थी।

दिलेर०—हाँ, जरूर झूठ थी। महाराज जब झूठ बताते हैं, तब जरूर ही झूठ थी।—क्यों राजासाहब, है कि नहीं ?

श्याम—शाहज़ादा जरूर दुश्मनोंको शिकस्त दे आये हैं।

दिलेर०—हाँ, मैं भी तो यही सोच रहा था। शाहज़ादे साहब, क्या आप राणाको कैद कर लाये हैं।

अकबर—नहीं दिलेरखाँ, मैं ही राणाके यहाँ कैद हो गया था।

श्याम०—चतुराईसे छूट आये हैं ?

अकबर—नहीं राजासाहब,—राणाने मेहबानी करके छोड़ दिया है।—दिलेरखां राजपूतोंकी कौम लड़ना जानती है।

दिलेर०—सच शाहज़ादा साहब ?

अकबर—सिर्फ लड़ना ही नहीं जानती, माफ करना भी जानती है।

दिलेर०—यह बिल्कुल नई बात अपने ढूंढ़ निकाली !

श्याम०—इस वक्त आप कैसे छूटे ?

अकबर—दिलेरखाँ—सुनो—

दिलेर०—राजासाहबसे कहिए—सुननेके सिए वे मुझसे ज़ियादह मुस्तैद हैं।

अकबर—सुनिए राजसाहब, मैं जिस वक्त अरावली पहाड़के दर्रेमें, पिंजड़ेमें चिड़ियाकी तरह, फँसा हुआ था, मैं और मेरी फौज खानेके लिए कुछ न होनेसे मुर्दा हो रही थी उस वक्त राणाने अपने लड़के जयसिंहको भेजा—मुझे मारनेके लिए नहीं, कैद करनेके लिए नहीं, —मुझे खाने-पीनेका सामान देनेके लिए—वहाँसे छुटकारा देनेके लिए।—और क्या चाहते हो ?

दिलेर०—राणा और भी एक काम कर सकते थे। अपनी एक लड़कीसे शाहज़ादाका विवाह भी कर सकते थे।—जाइए, अब भीतर जाइए। जैसेके तैसे घर लौट आये, यह भी गनीमत है।—चलिए राजासाहब, क्या आज यहाँ आपकी दावत है?

(शाहजादा एक ओर, दिलेरखाँ और श्यामसिंह दूसरी ओर जाते हैं।)

छट्ठा दृश्य

स्थान:—राजपूतोंकी छावनी

समय—तीसरा पहर

[राणा राजसिंह और महामाया दोनों बैठे हैं। सामने मुगलोंके झंडे लिए दुर्गादास और अन्यान्य सामन्त खड़े हैं।]

राज०—धन्य हो दुर्गादास, तुमने मुगलोंको मेवाड़से निकाल बाहर कर दिया।

रानी—धन्य हो दुर्गादास, तुम बेगमको कैद कर लाये।—आज मैं बदला चुकाऊँगी।

राज०—क्या? दुर्गादास, तुम बादशाहकी बेगमको कैद कर लाये हो? कौन बेगम?

दुर्गा०—काश्मीरी बेगम—गुलनार।

राज०—उन्हें कैद कर लाये? उसी घड़ी छोड़ नहीं दिया?

दुर्गा०—राणासाहब, मैं केवल सेनापति था। युद्धमें शत्रुके आदमियोंको कैद करने-भरका मुझे अधिकार था। कैदियोंको छोड़नेका अधिकार राजाको होता है।

राज०—जाओ दुर्गादास, बेगम साहबाको इसी दम छुटकारा देकर

इज्जतके साथ बादशाहके पास भेज दो ।

रानी०—क्यों राणा ?

राज०—औरतके साथ हम लोगोंका कुछ झगड़ा नहीं है ।

रानी—औरतके साथ झगड़ा नहीं है ? तो फिर मैंने आपका आश्रय क्यों लिया है महाराणा ? मुझे ही पकड़नेके लिए क्या यह भारी चढ़ाई नहीं हुई है ? मैं अगर इस युद्धमें पकड़ ली जाती, तो बेगम मेरे साथ क्या सलूक करती ?

राज०—हम मुगलोंकी नीतिका अनुकरण करने नहीं बैठे हैं !

रानी—नहीं महाराणा, मैं इस बेगमको इस तरह न छोड़ूँगी । मैं बदला चुकाऊँगी ।

राज०—बदला ? किसका बदला महामाया ?

रानी—किसका ? यह पूछिए कि उसकी किस किस हरकतका बदला न लूँगी ? इस काश्मीरी बेगमने ही मेरे पति और पुत्रकी हत्या की है, यह काश्मीरी बेगम ही मेरे यों जंगली जानवरकी तरह एक जगहसे दूसरी जगह भागते फिरनेका कारण है—इसका बदला लूँगी राणा, मैं उसे अपनी मुट्ठीमें पाकर न छोड़ूँगी । बदला लूँगी ।

राज०—क्या बदला लोगी ?

रानी—इस बारेमें मैंने अभी तक कुछ नहीं सोचा है राणा, इस बारेमें सोचूँगी । सोचकर ठीक करूँगी । उसे तिल तिल करके जलाना भी यथेष्ट न होगा । उसके शरीरमें सुइयाँ चुभाना भी यथेष्ट न होगा। सोचकर ठीक करूँगी । किसी तरहकी नई यन्त्रणाके यन्त्रका आविष्कार करूँगी । स्त्रीके लायक सजा स्त्री ही सोच सकती है ।)

राज०—महामाया, भला हम-तुमको किसीके पापका दण्ड देनेका क्या अधिकार है ? जिनका यह काम है वे ही—

रानी—(उठकर) वे ?—कहाँ हैं वे ? वे कहाँ हैं ? वे हाथ समेटे बैठे हैं। आकाशका वज्र सदा पापीके सिरपर ही नहीं गिरता महाराज, पुण्यात्माके सिरपर भी गिरता है। भूकम्पसे पापीका ही घर-बार नहीं नष्ट होता, बेचारे निरीह लोगोंके झोपड़े भी मिट्टीमें मिल जाते हैं। प्रबल बहियामें क्षुद्र घास-फूस ही डूबते हैं,—बड़े बड़े पेड़ वैसे ही सिर ऊँचा किये खड़े रहते हैं। ईश्वरका नियम धर्म-अधर्मका विचार नहीं करता—जिसे दुर्बल, जीर्ण और पुराना पाता है, उसीकी गर्दन पहले दबाता है।

राज०—(शान्त भावसे) महामाया, जोशमें आकर ईश्वरका विचार करनेके लिए तैयार न होओ—निश्चय करो, ईश्वरके नियमसे अन्तको अधर्मका पतन अवश्य होगा।

रानी—कब होगा ? मैंने तो आजतक नहीं देखा राणा, मैंने तो आजतक यही देखा है कि सरलता सदासे चालाकीके पेरों पड़कर भीख माँगती आती है, चालाकीने एक बार उसकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। सत्य सदासे झूठकी गुलामी करता आता है—अपने मस्तकको ऊँचा नहीं कर सकता। मैं सदासे न्यायकी जगहपर अन्यायकी विजय-पताका फहराती हुई देख रही हूँ। मैं सदासे धर्मके टूटे मन्दिरमें अधर्मके विजयकी जयध्वनि सुनती आ रही हूँ। पुण्यके हरे-भरे राज्यके ऊपरसे भयानक पापकी रक्तरंजित बहिया लहराती देख पड़ रही है। घूस, अत्याचार, झूठ, विश्वासघात आदिसे पृथ्वी परिपूर्ण हो रही है।—

तब भी तुम कहते हो, अन्तमें धर्मकी जय होगी!—कब होगी? बतलाओ कब होगी?

राज०—शान्त होओ महामाया, अपनेको सँभालो—धैर्य धारण करो।

रानी—धैर्य? राणा, अगर तुम स्त्री होते और तुम्हारा पति परदेशमें किसी विश्वास-घातकके हाथों विष देकर मारा जाता; अगर बेदर्दीके साथ तुम्हारे सरल, उदार, पुत्रकी हत्या की जाती; अगर मेरी तरह नन्हें नन्हें निःसहाय निरीह बच्चोंको लेकर एक देशसे दूसरे देशमें आकर भिक्षुककी तरह द्वारा-द्वार मारे-मारे फिरना पड़ता; तो तुम समझते।—धैर्य? नहीं राणा,—मैं उस पापिनको यों न छोड़ूंगी।

राज०—दुर्गादास, जीते जी मैं अबलाके ऊपर अत्याचार होते न देख सकूँगा। जाओ, तुम सम्मानके साथ बेगमको बादशाहके पास पहुँचा दो।

रानी—दुर्गादास, तुम राणाके नौकर नहीं हो। मैं तुम्हारी मालकिन हूँ।

दुर्गा०—क्षमा कीजिए महारानी, इस युद्धमें हम सब राणासाहबके ही अनुचर हैं। बेगम आज मेवाड़के राणाके यहाँ कैद है; मारवाड़की रानीके यहाँ नहीं। महारानी, अपनेको न भूलिए। आपहीकी रक्षाके लिए राणाने यह युद्ध किया है। राणा आपके हितचिंतक हैं। उनकी आज्ञा मानना आपका भी धर्म है।

रानी—(कुछ देर चुप रहकर) तुम सच कहते हो दुर्गादास, (फिर राणाके सामने घुटने टेककर) राणा, क्षमा कीजिए। हृदयके शोकावेगसे अधीर होकर मैं पागलसी हो गई,—क्षमा कीजिए। किन्तु

यदि तुम इस तीव्र वेदना, इस दारुण ज्वाला, इस गहरी जीकी जलनको जान सकते।—मैं पागल हो रही हूँ! क्षमा कीजिए।

राज०—मैं पहले ही क्षमा कर चुका हूँ महामाया, मैं चाहता हूँ कि जो क्षमा तुमने मुझसे माँगी है वही क्षमा तुम बेगमको दिखलाओ। मैं न्याय-विचारके लिए बेगमको तुम्हारे ही पास छोड़े जाता हूँ। उसे क्षमा करो, अपना महत्त्व दिखलाओ। महामाया, स्नेह, दया, भक्ति, क्षमा आदि गुणोंसे ही स्त्री-जाति पूजनीय है। ये गुण ही अबलाकी शक्ति हैं। और अगर तुम दंड ही देना चाहती हो, तो सोचो तो, तुमने अपने ऊपर अत्याचार करनेवालेको अगर हँसते हँसते क्षमा कर दिया, तो क्या वह उसके लिए कम दण्ड है?

रानी—ठीक है! बेगमको ले आओ दुर्गादास!

(दुर्गादासका प्रस्थान)

राज०—अच्छा, तो मैं अब तुम्हारी दयाके ऊपर बेगमको छोड़े जाता हूँ महामाया!　　(राणाका प्रस्थान)

रानी—यह भी ठीक है! इस न्यायासनपर बैठकर मैं उसका न्यायविचार करूँगी—इतना ही यथेष्ट है। भारतकी सम्राज्ञी, औरंगजेबकी बेगम, मेरे पति और पुत्रकी हत्या करनेवाली डाइन, आज मेरे सामने अपराधी कैदीकी दशामें खड़ी होगी; मैं सिंहासनपर बैठे बैठे उसके मुँहकी ओर देखकर उसे प्राणोंकी भिक्षा दूँगी। यही क्या बुरा है!—वह आ रही है। इस समय भी मुँहपर वही ऐंठन, नजरमें वही घमंड, चालमें वही अहंकार है! जगदीश्वर, तुमने पापको इतना उज्ज्वल बनाकर तैयार किया है!

[बेगम गुलनारके साथ दुर्गादासका प्रवेश]

रानी—सलाम बेगमसाहबा!

गुलनार—जसवन्तसिंहकी रानी ?

रानी—हाँ, क्या पहचान नहीं सकती हो ? जिसे पकड़नेके लिए इतनी तैयारीसे यह चढ़ाई हुई थी, मैं वही जसवन्तसिंहकी रानी हूँ। आपने मेरे पति और पुत्रको खा लिया। इससे भी आपका राक्षसी पेट नहीं भरा। अब मुझे और मेरे छोटे बच्चेको भी खाना चाहती हो ?—क्या इसी बीचमें सब भूल गईं ? इतनी भूल करनेसे काम कैसे चल सकता है बेगम साहबा ?

गुलनार—(दुर्गादाससे) और तुम हो दुर्गादास ?

दुर्गादास—हाँ बेगम साहबा !

गुल० —मुझे यहाँ क्यों लाये हो ?

दुर्गा०—यहाँ आपका न्याय-विचार होगा।

गुल०—कहाँ ? किसके आगे ?

रानी —मेरे यहाँ, मेरे आगे।—बात जरा रूखी बेढंगी जान पड़ती होगी, क्यों न ? क्या कीजिएगा ?—चक्र घूम गया है बेगम, क्यों ? दुर्गादासकी ओर इतने गौरसे आप क्यों देख रही हैं ? सोचती होंगी, इस काफिरकी इतनी मजाल कि आपको कैद कर लावे ! यही सोचती हैं,—क्यों न ? अच्छा, अब आप कौन सजा पसंद करती हैं ?

गुल०—मैं तुम्हारे यहाँ कैद हूँ; जो जी चाहे, करो।

रानी — जो जी चाहे वही करूँ ? बेगमसाहबा, मेरे मनकी सजा तो तुम्हारे लिए बहुत कठिन होगी। मेरी जो इच्छा है, वह दण्ड तुम्हारे लिए असह्य होगा। तुम उसे सह न सकोगी। वह बड़ी ही कड़ी सजा है। नरककी ज्वाला उसके आगे वसन्त-वायुके समान

ठंडी है !—सैकड़ों बिच्छुओंके काटनेकी जलन भी उसके आगे झरनेके पानीके समान शीतल है ! मेरा जो जी चाहे ? मेरा क्या जी चाहता हैं, जानती हो बेगम ?—खैर जाने दो—तुम मुझे अगर पकड़ मँगवातीं, तो क्या करतीं बेगम साहबा ?

गुलनार—क्या करती ? तुमको अपने पैरोंका धोवन पिलाती। उसके बाद मरवा डालती।

रानी—अभीतक तेज नहीं गया ! विषका दाँत उखड़ गया, मगर फुफकार कम नहीं हुई ! बेगम साहबा, खेद है, तुम्हारी आशा पूरी नहीं हुई। आज तुम्हारे आगे इस तरह मुझे खड़ा होना चाहिए था, क्यों न ? पर क्या किया जाय, तुमको ही मेरे आगे इस तरह खड़ा होना पड़ा।—देखो गुलनार, सुनो बादशाहकी बेगम, आज तुम मेरी मुट्ठीमें हो। चाहूँ तो मैं तुमको पैरका धोवन भी पिला सकती हूँ, तुम्हारी हत्या भी कर सकती हूँ। किन्तु मैं वह कुछ न करूँगी। मैं तुम्हें छोड़ देती हूँ। सेनापति, इनको बादशाहके पास पहुँचा आओ। (गुलानरसे)—खड़ी हुई हो ?—विस्मय हुआ ?—राजपूतोंका यही बदला है।　　(यवनिका-पतन)

तीसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—दिल्लीके महलकी बाहरी बैठकका बरामदा

समय—प्रातःकाल

[तहव्वरखाँ और शाहज़ादा अकबर खड़े खड़े बातें कर रहे हैं ।]

तहव्वर—हाँ, तो तुम लोगोंको राजपूतोंने ठीक उसी तरह फँसा लिया था, जैसे मूसेदानमें मूसेको फँसा लेते हैं ।

अकबर—ठीक उसी तरह । हम लोग दूर,—बहुत दूर,—तक सीधे चले गये, वहाँ देखा, आगे जानेकी राह नहीं है । घूम कर देखा, वह राह भी बन्द थी ।

तहव्वर० —और पहाड़के ऊपरसे राजपूत लोग तमाशा देख रहे थे कि तुम लोग मूसेदानके भीतर फँसे हुए मूसेकी तरह एक बार इधर और एक बार उधर दौड़ रहे हो ?

अकबर—वह पहाड़ी रास्ता इतना तंग था कि सौ आदमी भी पास-पास नहीं खड़े हो सकते थे । ऐसा तंग था कि हमारी फौजका कौन आदमी कहाँ है, यह भी देखना मुश्किल था ।—ऐसा तंग था ।

तहव्वर०—तो लड़ाई नहीं हुई ?

अकबर—लड़ाई किससे करते ? पहाड़से ? दुश्मनोंका पता ही नहीं चला ।

तहव्वर०—यही मैं बराबर कहता चला आता हूँ कि राजपूत लोग लड़ना जानते ही नहीं।—वे एक कायदा मानकर नहीं चलते। किसीने कभी सुना है—रसद लूटकर, भूखों मारकर, लड़ाई जीतना ?

[आज़मका प्रवेश]

तहव्वर०—बन्दगी शाहज़ादा साहब !

आज़म—(उधर ध्यान न देकर) अकबर, तुमने सुना ?

अकबर—क्या आज़म ?

आज़म—मेवाड़की लड़ाईमें तुम्हारी इस हारसे अब्बाजान बहुत नाखुश हैं।

अकबर—फिर मैं क्या करूँ ?—और आज़म, इस लड़ाईमें सिर्फ मैंने ही शिकस्त नहीं खाई है। खुद दिलेरखाँ—

आज़म—दिलेरखाँके ऊपर भी बादशाह सलामत खुश नहीं हैं।

अकबर—और बादशाह सलामत खुद ?—और तुम ? तुम लोग क्या इस लड़ाईमें जीत आये हो ?

आज़म—हमने दुश्मनोंसे लड़कर शिकस्त खाई है।

अकबर—और मैंने ?

आज़म—तुम ऐश-अशरतमें पड़े रहे, लड़े नहीं। कमसे कम बादशाह सलामतका यही ख़याल है।

अकबर—होने दो, इसके लिए मैं क्या करूँ ?

तहव्वर०—शाहज़ादा लड़ते किससे ?—

आज़म—चुप रहो !

अकबर—तो अब क्या करना होगा ?—मैं डरपोक हूँ, ऐयाश हूँ, मुझे नाच और गाना पसन्द है।—तो होगा क्या ?

आज़म—होगा और क्या ? अकबर, बादशाह सलामत तुमको नालायक समझकर फिर बंगाल भेजे देते थे। मैंने बहुत कुछ कह-सुनकर उनके इस इरादेको बदला है। देखो, मैं तुमसे दोस्तके तौरपर कहता हूँ,—अब्बाजान तुमपर बहुत ख़फा हैं; खबरदार, उनके पास आना-जाना तुम्हारे लिए अच्छा न होगा ! (प्रस्थान)

तहव्वर०—शाहज़ादा साहब, ढंग तो अच्छे नहीं नज़र आते। आपने लड़ाई न जीतकर बड़ी ही बेवकूफी की है।

अकबर—मैं क्या जानबूझकर अपनी मर्ज़ीसे हार आया हूँ ?

तहव्वर०—यह ठीक है, लेकिन गैरमर्ज़ीसे भी हारना अच्छा नहीं हुआ। तख़्त पानेकी अगर कुछ उम्मेद थी, तो वह भी गई।

अकबर—तो फिर तख़्त किसे मिलेगा ?

तहव्वर०—आज़मको। आपने देखा नहीं, कैसी कहरकी नज़रसे घूरकर मुझे डाँट बताई। आज़मने ज़रूर बादशाहको सुझा-बुझाकर अपने माफिक कर लिया है।

अकबर—तो आज़मने ही कौन बड़ी बहादुरी दिखाई है ! वही क्या जीतकर आये हैं ! हारकर बेगम साहबा तकको गँवा आये हैं। राजपूत लोग भले मानस होते हैं, इसीसे उन्होंने बेगम साहबको बादशाह सलामतके पास भेज दिया है।

तहव्वर०—आज़म भी हार आये हैं; लेकिन वह हार तो खुद बादशाहकी है न। बादशाह आज़मसे उसके लिए कुछ कह नहीं सकते। आज़म बादशाहकी मातहतीमें उनके कहनेके माफिक कार्रवाई करते थे; और आप थे खुदमुख़्तार सरदार।

अकबर—आज़मको बादशाह सलामत प्यार करते हैं। क्योंकि वह चापलूस है, कट्टर मुसलमान है—शराब नहीं छूता, गाना नहीं

सुनता, दस दफ़े नमाज़ पढ़ता है; मगर उसके ये सब ढोंग हैं।—बादशाहको खुश रखनेका ढंग है।

तहव्वर०—आप भी वही क्यों नहीं करते ?

अकबर—तहव्वरखाँ,—मैं सल्तनत और तख़्तको छोड़नेके लिए राजी हूँ, मगर शराब, औरत और गानेको छोड़नेके लिए तैयार नहीं। मैं आज़मकी तरह मक्कार, फरेबी, छोटी तबीयतका नहीं हूँ। तस्बीह हाथमें लिये रहकर फरेब करना मुझे पसन्द नहीं है।

तहव्वर०—चुप रहिए, बादशाह सलामत आ रहे हैं।

(अकबर चुपचाप दूसरी ओरसे चले जाते हैं और इधर औरंगजेब और दिलेरखाँ प्रवेश करते हैं।)

औरंग०—क्या दुर्गादासने झालावाड़ जीत लिया ? और पुरमण्डलमें सुबलदासने खाँ और रुहेलोंको शिकस्त दी ?

दिलेर०—हाँ जहाँपनाह, और यह भी खबर है कि दयालशाहने मुगलोंकी फौजको मालवेसे निकाल भगाया है। अब वह वहाँ काजियोंको पकड़-पकड़कर उनकी दाढ़ियाँ मुड़वाता है, कुरानको कुओंमें डलवाता है, मसजिदोंको ढहवा रहा है।

औरंग०—क्या ! दीनपर इस तरह जुल्म !

दिलेर०—हिन्दू लोग इस बातको नहीं जानते थे, हुजूरने ही उनको यह राह दिखलाई है। क्या हुजूरने हिन्दुओंके वेदोंको आगमें नहीं जलवाया ? ब्राह्मणोंको पकड़कर जबरदस्ती कल्मा नहीं पढ़वाया ? तीर्थोंको नापाक नहीं किया ? मन्दिरोंको नहीं गिरवाया ?—जनाब, सुनिए, हिन्दुओंसे मुख़ालफत छोड़िए, 'जजिया' बन्द कर दीजिए। हिन्दू और मुसलमान एक हो जायँगे।

औरंग०—कभी नहीं। जबतक मैं ज़िन्दा हूँ—तबतक मुसलमान मुसलमान हैं और काफिर काफिर हैं!—दिलेरखाँ, मैंने दक्खिनसे मोअज्जमको बुलाया है। अब सारी मुगलोंकी फौज लेकर मारवाड़पर चढ़ाई करूँगा। देखूँ क्या होता है।—तहव्वरखाँ, तुम सत्तर हजार फौज लेकर मारवाड़पर चढ़ाई करो। मैं और भी फौज अकबरकी मातहतीमें भेजता हूँ। खुद मैं भी फौज लेकर पीछेसे आता हूँ। देखो अगर मारवाड़पर फतह पा सकोगे, तो तुमको मैं इनाममें एक सूबा दूँगा और अगर हारे तो हथकड़ी-बेड़ी। (प्रस्थान)

तहव्वर०—क्या कहते हो खाँ साहब ?

दिलेर०—एक दफा मैं देख चुका हूँ; एक दफा तुम भी देखो।

दूसरा दृश्य

स्थान—मारवाड़का पहाड़ी स्थान

समय—प्रातःकाल

(दुर्गादास और भीमसिंह दोनों आमने सामने खड़े हैं। थोड़ी दूरपर गाँवोंके रहनेवाले लोग कोलाहल कर रहे हैं।)

दुर्गा०—भीमसिंह, अबकी बार बादशाह सारी मुगल-सेना लेकर मारवाड़पर चढ़ाई कर रहे हैं। अबकी हम लोगोंके लिए जीवन-मरणकी समस्या उपस्थित है। इस बार राजपूत-जातिका या तो सर्वसंहार ही हो जायगा और या यह जाति उठ खड़ी होगी।—वीरवर, इस महायुद्धके लिए तैयार हो जाओ।

भीम०—इसीके लिए पिताजीने मुझे यहाँ भेजा है। मैं इस युद्धमें प्राणतक देनेके लिए तैयार होकर आया हूँ।

दुर्गा०—सीसोदिया वीर, तुम्हारी वीरता और तुम्हारे स्वार्थत्यागकी बात मुझे अच्छी तरह मालूम है। किन्तु सुनो मेवाड़के युवराज, तुम महत् हो, पर इस समय तुमको उससे भी अधिक महत् बनना होगा। तुम वीर हो, पर इस युद्धमें तुमको वीरताकी पराकाष्ठा दिखानी होगी।

भीम०—सेनापति, आप निश्चिन्त रहिए। अपना कर्त्तव्य समझकर मैं इस युद्धमें प्राणत्याग करने आया हूँ। वह कर्त्तव्य मेरा अपने प्रति है, पिताके प्रति है और सारी राजपूत जातिके प्रति है। उस कर्त्तव्यके मार्गसे भीमसिंह एक पग पीछे नहीं हटनेका। आप मुझपर विश्वास रखिए।

दुर्गा०—भीमसिंह, कुमार, हमको तुमपर पूर्ण विश्वास है।

भीम०—महारानी कहाँ हैं?

दुर्गा०—वे इस समय सारे मारवाड़में—नगरोंमें, गाँवोंमें, जंगलोंमें, महाड़ोंमें—सर्वत्र ही फिर रही हैं। वे खुद सेना इकट्ठी कर रही हैं और राजपूत-जातिको उत्तेजित—उत्साहित कर रही हैं। जसवन्तसिंहकी मृत्युसे मारवाड़की प्रजा विछिन्न हो गई, इसीसे उसे एकत्र करनेका काम महारानी खुद कर रही हैं।

भीम०—मैं एक बार उनसे मिलना चाहता हूँ।

दुर्गा०—आज ही उनसे मुलाकात होगी कुमार, आज वे इसी गाँवमें आनेवाली हैं। मैं उन्हींसे मिलने यहाँ आया हूँ।

(समरदासका प्रवेश)

दुर्गा०—कुछ खबर मिली है भैया?

समर० — हाँ, मुगल-सेनापति तहव्वरखाँ ७०,००० फौज लिये मारवाड़की ओर आ रहा है। पीछे शाहज़ादा अकबरके साथ और भी फौज़ आ रही है।

दुर्गा०—और बादशाह ?

समर०—वह भी सेना लिये अजमेरमें ठहरे हैं। उनके साथ एक लाखसे भी अधिक सेना है।

(दुर्गादास भीमसिंहकी ओर देखते हैं।)

भीम०—राठौरोंकी सेना कितनी है सेनापति ?

दुर्गा० — दस हजार। हमारी एक लाखसे अधिक सेना थी। जसवन्तसिंहके मरनेसे सब इधर—उधर तितर-बितर हो गई है।—सेनाके अधिकांश लोग रोज़गार और खेतीमें लग गये हैं। महारानी उन्हींको जमा करनेके लिए निकली हैं। इन गाँवोंके रहनेवालोंको देखते हो ? जैसे इनमें जान ही नहीं है। किन्तु ये ही लोग उत्तेजित होंगे। महारानीके शब्दोंमें जैसे उत्तेजनाकी बिजली भरी हुई है। वे जैसे आज किसी स्वर्गीय प्रेरणासे यह काम कर रही हैं। उनकी बातें आज ठंडे पत्थरको भी गर्म कर सकती हैं— कायरको भी जोशसे पागल बना सकती हैं।

भीम०—वे देखो महारानी आ रही हैं।

दुर्गा०—हाँ, वे आ रही हैं कुमार, जरा हटकर खड़े होओ।

भीम०—निःसन्देह, वह अपूर्व रूप है सेनापति, ऐसा रूप मैंने कभी नहीं देखा ! कैसी दानव-दलनी चण्डिकाकी मूर्ति है ! पीठपर घने बिखरे हुए केश, आँखोंमें दिव्य ज्योति, मस्तकपर अपूर्व गर्वकी झलक और ओठोंपर अभय-वरदायिनी शान्तिकी रेखा देखकर ऐसा कोई न होगा, जो सिर झुकाकर इस देवीकी आज्ञा माननेके लिए तैयार न

हो जाय। बस अब कुछ भय नहीं है दुर्गादास, स्वयं जननी जन्म-भूमि इस रूपसे हमारी सहायता करनेको खड़ी हैं—अब कुछ डर नहीं है।

(दुर्गादास और भीमसिंह आड़में हो जाते हैं। रानी और उनके पीछे ग्रामवासी प्रवेश करते हैं।)

ग्रामवासी—जय रानी माईकी जय !

१ ग्राम०—महारानीके लिए जगह दो।

२ ग्राम०—हम महारानीको अच्छी तरह देख नहीं पाते।

रानी—(पासके एक ऊँचे पत्थरपर खड़े होकर) ग्रामवासियो, सैनिको, पुत्रो—

३ ग्राम०—हमे सुन नहीं पड़ता। हम सुन नहीं पाते।

रानी—सुन पड़ेगा। चुप होकर सुनो।

४ ग्राम०—सब लोग चुप होकर, मन लगाकर सुनो।

रानी—सुनो, आज मैं यहाँ क्यों आई हूँ—सुनो—

(ग्रामवासियोंमें कोलाहल)

५ ग्राम०—अरे भाई, चुप होकर सुनते क्यों नहीं, सुनो—

रानी—पहले मैं अपना परिचय दूँ। सुनो, मैं कौन हूँ।

६ ग्राम०—अरे भाइयो, चुप रहो, सुन नहीं पड़ता है।

रानी—मारवाड़के रहनेवालो, मैं जसवन्तसिंहकी रानी हूँ। बादशाह औरंगबेज़की चालाकीसे अफगानिस्तानमें मेरे स्वामी—तुम्हारे राजा—जसवन्तसिंहकी मौत हुई। मेरे बड़े लड़के—तुम्हारे राजकुमार—पृथ्वीसिंहकी औरंगज़ेबके छलसे विषके द्वारा मृत्यु हुई। मेरा छोटा लड़का तुम्हारा होनहार राजा—अजितसिंह औरंगजेबकी आँखोंका काँटा होनेके कारण एक एकान्त स्थानमें छिपाकर रक्खा गया है। और मैं—तुम्हारी रानी—राह-राह मारी-मारी फिर रही हूँ।

(ग्रामवासियोंका कोलाहल)

७ ग्राम०—तो हम क्या कर सकते हैं ?

८ ग्राम०—हममें उतनी ताकत ही नहीं है ।

९ ग्राम०—किन्तु बादशाहके ऐसे घोर अत्याचारको रोकनेके लिए कुछ न कुछ उपाय अवश्य करना चाहिए ।

१० ग्राम०—हमारी तो रानी हैं । हम न करेंगे तो और कौन करेगा ?

रानी—सुनो ग्रामवासियो, किन्तु मैं अपना ही दुःख जतानेके लिए तुम्हारे पास नहीं आई हूँ । मैं आई हूँ आज सुन्दर मारवाड़के लिये तुमसे सहायता माँगने । बादशाह एक लाखसे अधिक सेना लेकर मारवाड़पर चढ़ाई किये आ रहा है । तुम लोग मारवाड़की सन्तान हो, तुम राजपूत हो, तुम वीर कहकर प्रसिद्ध हो । तुम क्या निश्चिन्त होकर खड़े-खड़े अपनी जन्मभूमिको पर-पद-दलित होते—लुटते और मिटते—देख सकोगे ?

११ ग्राम०—एक लाखसे अधिक सेना ! हाय अभागे मारवाड़ !

१२ ग्राम०—सेनापति अगर झालावाड़पर चढ़ाई न करते, तो यह आफत न आती ।

१३ ग्राम०—हाँ । सोते हुए शेरको जगाना यही कहलाता है ।

१४ ग्राम०—एक लाख मुगल-सेनासे युद्ध करना हीनवीर्य मारवाड़के लिए कभी सम्भव नहीं ।

१५ ग्राम०—किसी तरह नहीं ।

रानी—सम्भव नहीं है ? सम्भव नहीं है ? तो तुम यहाँ चुपचाप खड़े खड़े देखा करोगे कि तुमको निकालकर, नष्टकर, मुगलोंकी सेना इस तुम्हारी स्वर्ण-भूमिपर अधिकार कर ले ? हा, धिःकार है ! इतना

पतला पानी भी, अगर उसे उसकी जगहसे हटाओ, तो बाधा देता है। और तुम चुपचाप, कोई चेष्टा न करके, अपना देश शत्रुओंको सौंप दोगे ? तुम हिन्दू हो ! तुम राजपूत हो ! तुम क्षत्रिय हो !—फिर भी कहते हो कि सम्भव नहीं है ? जसवन्तसिंह अगर जीते होते, तो उनके सामने यह कहनेका साहस तुम्हें न होता। उनके लिए तुम सब प्राण देनेको तैयार थे। जसवन्तसिंहकी एक दृष्टिसे तुम्हारा खून गर्म हो उठता था, उनकी एक बातसे दस हजार तलवारें म्यानसे खिंच जाती थीं, उनको घोड़ेपर सवार देखते ही तुम्हारी 'जय-ध्वनि' आकाशमें गूँज उठती थी। मैं स्त्री हूँ। मैं उनकी अनाथ स्त्री हूँ। मैं आज फकीर—कंगालसे भी बदतर हो रही हूँ। मेरी बात तुम क्यों सुनोगे ? मैं तो अब तुम्हारी रानी नहीं हूँ ?

सब ग्रामवासी—आप हमारी महारानी हैं। हम आपकी बात सुनेंगे।

रानी—अच्छा, अगर सुनोगे तो अपने गाँवों और झोपड़ोंको छोड़ कर आओ। तलवारको लो। उठो—इस उदासीनताको छोड़ो। एक बार दृढ़ होकर उठ खड़े होओ। उठो, जैसे तुरहीके शब्दसे सोता सिंह जाग उठता है। उठो—जैसे पुंगीकी ध्वनि सुनकर सर्प फुफकार उठता है। उठो—जैसे बिजलीकी कड़कसे पहाड़की कन्दराओंमें प्रतिध्वनि जग उठती है, जैसे तूफानमें समुद्रकी लहरें उठती हैं। उठो—राजस्थान जाने—औरंगजेब जाने कि तुम्हारी वीरता गुप्त थी, लुप्त नहीं हुई।

सब ग्राम०—महारानी, हम युद्ध करेंगे। किन्तु इस युद्धमें जीतनेकी आशा नहीं है। मरना ही हाथ लगेगा।

रानी—मरना ? पुत्रो, एक दिन क्या मरना न होगा ? बिछौनेपर पड़े पड़े दुर्गतिसे मरना सुखकी मौत नहीं है। अपनी इच्छासे देशके लिए, औरोंके लिए, कर्त्तव्यके लिए मरना ही सुखकी मौत है।

सब ग्राम०—हम लड़ेंगे महारानी। आप जहाँ ले जायँगी, वहाँ चलेंगे।

रानी—यही तो तुम्हारे योग्य बात है। सुनो, मैं किसीको उसकी इच्छाके विरुद्ध नहीं बुलाती। अगर किसीको अपनी जन्म-भूमिका खयाल हो, यदि किसीको अपने धर्मपर भक्ति हो, यदि कोई स्वाधीनताके लिए प्राण देनेको तैयार हो, तो वह आवे। वह अकेला ही एक सौके बराबर है। कच्चे दिलके, दुबिधामें पडे हुए आदमियोंको मैं नहीं चाहती। मुझे एकाग्र और दृढप्रतिज्ञावाले आदमी चाहिए। दो रास्ते हैं, पसन्द कर लो।—एक तरफ विलास, आमोद, आराम, और भोग है; दूसरी तरफ मेहनत, अनाहार, दारिद्र्य और दुःख है। एक ओर संसार, घर-बार और शान्ति है; दूसरी ओर देशके प्रति कर्तव्य है—पसन्द कर लो।

सब ग्राम०—हम कर्तव्य-पालनको ही पसन्द करते हैं।

रानी—अच्छी बात है। तो आज सब राठौर एक झंडेके नीचे खड़े हो जाओ। आपसके छोटे-बड़े सब झगड़ोंको भूल जाओ। एक बार सब मिलकर हृदयसे पुकारो—जननी जन्मभूमिकी जय।

सब ग्राम०—जननी जन्मभूमिकी जय।

तीसरा दृश्य

स्थान—युद्धभूमिमें रजियाका डेरा

समय—रात्रि

[पानी बरसता है, हवा चलती है, बिजली चमकती है, और बादल गरजते हैं ।]

[रजिया गा रही है ।]

गति

गगनमें घोर घटा घनकी घेर आई है ।
प्रलयकी ऐसी अँधेरी जगतमें छाई है ।
फुहार लेके झकोरे हवाके चलते हैं ।
ये आँधी-पानीकी कैसी बिकट लड़ाई है ।
गरज रहे हैं ये बादल जो गड़गड़ाहटसे ।
चमकसे बिजलीकी दिलमें दहल समाई है ।
प्रचण्ड अंधड़ आँधी हुई है पगली-सी ।
गगनसे उठके ये धरतीकी ओर धाई है ।
बिखेर बालोंको यह अट्टहास करती-सी ।
आवाज ' हा हा ' की करती बुलन्द आई है ।
चमकसे कौंधेकी आँखें हैं चौंधियाई-सी ।
ये कड़कड़ाती है बिजली ! खुदा, दोहाई है ।

रजिया—ओः ! या खुदा ! यह कैसा शोर-गुल है ! फौजकी चिल्लाहट ! तोपोंका गरजना ! जंगी बाजोंकी धमाचौकड़ी !—एका-एक यह क्या होने लगा ! कान जैसे फटे जा रहे हैं !

(कानोंपर हाथ रखना)

[अकबरका प्रवेश]

रजिया—कौन ? अब्बा ?

अकबर—हाँ रजिया !

रजिया—ओः ! आप तो सिरसे पैरतक तरबतर हो रहे हैं ! बाहर यह क्या हो रहा है ! इतना शोर-गुल क्यों मचा हुआ है !

अकबर—जंग हो रहा है। राजपूतोंने हमारी छावनीपर छापा मारा है।

रजिया—छापा मारा है सो तो खैर, लेकिन ये इतना बेसुरे चिल्लाते क्यों हैं ?

अकबर—तू नहीं समझ सकती रजिया, कि मामला कितना बेढब है। ओः ! एकपर एक करके हजारों लाशें गिर रही हैं !

रजिया—सो तो समझी। लेकिन मैं यह पूछती हूँ कि इतना चिल्लाते क्यों हैं ?

अकबर—क्या बकती है रजिया—यह खास मौतका सामना है ! मौतको इतने नजदीकसे मैंने कभी नहीं देखा !—ओः ! तुझे खबर है कि बाहर कितने लोग मर रहे हैं ?

रजिया—इसीसे भाग आये हो अब्बा ? डर लगता है ? डर क्या है अब्बा ?

अकबर—शायद आज मुझे और तुझे भी मरना पड़ेगा।

रजिया—अगर मरना ही होगा तो गाते-गाते मरूँगी ! किनारेसे टकराई हुई लहरकी तरह ही गाते-गाते मौतमें मिल जाऊँगी !

अकबर—(कान लगाकर) यह क्या ! बार-बार राजपूतोंका ही 'जय जय' का नारा बलन्द हो रहा है !—लो, दुश्मन लोग पास ही आ गये।

[तहव्वरखाँका प्रवेश]

नेपथ्यमें—जय, महारानीकी जय !

तहव्वर०—शाहज़ादा साहब, भागिए भागिए ।

अकबर—क्यों तहव्वरखाँ ?

तहव्वर०—हमारी हार हो गई ।

अकबर—हमारी फौज़ क्या कर रही है ?—सब मर गई ?

तहव्वर०—नहीं, सब नहीं मरी । ऐसी हालतमें, ऐसे मौकेपर समझदार लोग जो करते हैं वही वे लोग भी कर रहे हैं;—दुश्मनोंको पीछे छोड़कर—सिरपर पैर रखकर—भाग रहे हैं ।

रजिया—भाग रहे हैं ? यह क्या ! भागते क्यों हैं ? तहव्वरखाँ, राजपूतोंसे हारकर भागनेमें शर्म नहीं आती ?

तहव्वर०—उनको शर्म काहेकी ? वे तो औरत नहीं हैं, जो शरमाएँ ।—भागिए शाहज़ादा साहब, अभी वक्त है ।

रजिया—मैं नहीं भागूँगी । भागूँ क्यों ? न होगा मर जाऊँगी । अब्बा, तुम मुगल होकर, किस मुँहसे भागोगे ?

तहव्वर—जिस तरफ जंग हो रहा है उस तरफसे ठीक उल्टा मुँह करके । और किस मुँहसे भागा जाता है ?

रजिया—मैं नहीं भागूँगी ।

तहव्वर०—आप नहीं भागिएगा तो हम ही भागें । आप औरत हैं—आपको शायद कुछ शर्म हो, लेकिन हमको भागनेमें कुछ शर्म नहीं है !—क्यों न शाहज़ादा साहब ?

अकबर—ओः ! कैसी खतरनाक रात है ! कैसी हाय हाय मच रही है ! कैसी मार-काट हो रही है !

बाहर—भागो, भागो ! जय रानीकी जय ! हरहर बमबम !

रजिया—ओः कैसा शोर-गुल है !

तहव्वर०—क्या सोच रहे हो शाहज़ादा साहब, चलिए, आइए। आप तो मुझे औरतोंसे भी निकम्मे देख पड़ते हैं।

अकबर—ओः कैसी मार-काट मची हुई है ! इतनी मार-काट मैंने कभी नहीं देखी।

तहव्वर०—यों खड़े रहनेसे क्या होगा।—यह—यह—देखिए, डेरेके दरवाजेपर—इस तरफकी राहसे—वह दुश्मन —

(तहव्वरखाँका भागना)

अकबर—चलो, चलें रजिया, हम भी भाग चलें।

रजिया—अब्बा !

अकबर—चुप, इधरसे—इधरसे चुपचाप चली आ।

(रजियाको लेकर अकबरका प्रस्थान)

[दो राजपूत सिपाहियोंका प्रवेश]

१ सिपाही—कोई नहीं है—भाग गये। किधरसे भागे ?

२ सिपाही—इधरसे—

(सिपाहियोंका प्रस्थान)

[समरदास और राजपूत-सेनाका प्रवेश]

समर०—बोलो—भगवान् एकलिंगकी जय।

सब—जय भगवान् एकलिंगकी जय।

समर०—भीमसिंह कहाँ हैं ?

१ सिपाही—वे देख नहीं पड़ते।

समर०—जाओ, उनका पता लगाओ ।

(समरदासके सिवा सबका प्रस्थान)

समर०—ओह कैसी रात है ! कैसा युद्ध है ! कैसा भयानक हत्याकाण्ड है !

चौथा दृश्य

स्थान—मेवाड़का एक पहाड़ी किला । तालाबके किनारे दो पत्थरके चबूतरे

समय—चाँदनी रात

[जयसिंह खड़े हैं । सरस्वतीका प्रवेश]

सर०—नाथ !

जय०—सरस्वती !

सर०—मारवाड़में मुगलों और राजपूतोंकी लड़ाईका फल सुना ?

जय०—नहीं ।

सर०—सुनना चाहते हो ? अवकाश है ?

जय०—कहो ।

सर०—लड़ाईमें मारवाड़की जीत हुई । लेकिन—

जय०—लेकिन ?

सर०—लेकिन तुम्हारे भाई अब इस संसारमें नहीं हैं ।

जय०—कौन, भीमसिंह ?

सर०—(गद्गद स्वरसे) हाँ, उन्होंने मारवाड़की रक्षाके लिए इस युद्धमें प्राण अर्पण कर दिये ।

जय०—महत् उदार वीर भाई, तुमने अक्षय स्वर्ग प्राप्त किया !

सर०—और तुमने ?

जय०—शायद नरक।

सर०—हाय नाथ! (प्रस्थान)

जय०—सरस्वती, मुझसे घृणा न करो। मैं दयाका पात्र—असमर्थ हूँ।—वे पिताजी आ रहे हैं। साथमें मारवाड़की रानी और समरदास हैं। पिताकी तिरस्कार और करुणासे पूर्ण दृष्टि मेरे लिए असह्य होगी। (प्रस्थान)

[राजसिंह, रानी और समरदासका प्रवेश]

राज०—यहींपर बैठो बहिन, भीतर बड़ी गर्मी है—इसी जगह चाँदनीमें बैठो—यह स्थान भीमसिंहको बहुत प्यारा था। वह सबेरे यहाँ आकर बैठता था और एकाग्र होकर इस नील-सरोवरकी शोभा देखा करता था।

[सबका शिलापर बैठना]

रानी—राणाजी, भीमसिंहकी वीरताका वर्णन इतिहासमें सोनेके अक्षरोंसे लिख रखनेकी चीज है।

राज०—मैंने उसे खो दिया—सदाके लिए गवाँ दिया!

रानी—राणाजी, युद्धमें मरनेसे बढ़कर क्षत्रियके लिए गौरवकी मृत्यु और कौन हो सकती है? भीमसिंह अगर मेरा पुत्र होता, तो मैं उसकी और तरहसे मृत्यु कभी न चाहती।

राज०—तुम सच कहती हो महामाया।—कहो समरदास, भीमसिंहने कैसा युद्ध किया?

समर०—वैसा युद्ध आजतक किसीने नहीं किया होगा राणा साहब, सुनिए,—उस दिन रातको घोर अन्धकार था, आकाशमें बादल घिरे हुए थे, मूसलधार पानी पड़ रहा था। ऐसा घना अन्धकार था कि

हाथको हाथ नहीं सूझता था। बारबार बिजली चमकनेसे उस अँधेरी रातकी भयंकरता दीख जाती थी। बिजलीकी कड़क उस भयंकरताको और भी बढ़ा रही थी। उः—कैसी भयानक रात थी!

रानी—उसके बाद?

राजा०—(उद्भ्रान्त भावसे) ऐसी रात थी!—ऐसी रात थी!

समर०—उसी भयानक रातमें आपके वीर कुमारने हम लोगोंके बारबार मना करनेपर भी, केवल १०,००० मेवाड़की सेना लेकर मुगलोंकी छावनीपर धावा कर दिया—मुगलोंकी सेना एक लाखसे भी अधिक होगी!

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) मैंने उसे निकाल दिया था—उसे निकाल दिया था!

रानी—धन्य सीसोदिया-कुमार, उसके बाद?

समर०—उसके बाद "हरहर–बमबम" के सिंहनादने उस बिजलीकी कड़कको भी मात कर दिया और शत्रु-सेनाके आर्तनादमें पानी बरसनेका शब्द लीन हो गया।

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) मैंने अपने ही दोषसे उसे खो दिया!

रानी—फिर?

समर०—तब मैं १०,००० राठौर-सेना लेकर भीमसिंहकी सहायताके लिए गया। जाकर देखा—उस बिजलीके प्रकाशमें जो दृश्य मैंने देखा—उसे कभी नहीं भूल सकता राणा साहब!

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) उस दिन उसने कहा था—कुँअरने उस दिन कहा था—कि युद्धमें प्राण देने जाता हूँ!

रानी—कहो समरसिंह,—

समर०—महारानी, बिजलीके प्रकाशमें देखा कि शत्रुओंकी सेना बन्दूक, तलवार, भाले वगैरह लिए घूमकर खड़ी हुई है। भीमसिंहकी सेना एक विश्वग्रासी प्रलयकी बहियाकी तरह उसके ऊपर जा पड़ी। वैसे ही शत्रुओंकी तोपों और बन्दूकोंसे अग्निवर्षा होने लगी। क्या कहूँ, वह कैसा घोर युद्ध था!—मुझे तो वह ज्वालामुखीकी उगली हुई ज्वालाके साथ बवंडरका युद्ध जान पड़ा था!

रानी—धन्य भीमसिंह!—उसके बाद?

राज०—(उद्भ्रान्त भावसे) रूठकर चला गया! पितासे रूठकर पुत्र चला गया!

समर०—उस समय भीमसिंह मुझे बिजलीके प्रकाशमें उन्मत्तके समान—साक्षात् प्रलयके समान—देख पड़े। जहाँपर शत्रुओंकी संख्या अधिक होती थी, वहीं भीमसिंह देख पड़ते थे। उनकी १०,००० सेना दस लाख जान पड़ती थी—अकेले भीमसिंह दस सेनापतियोंके बराबर काम कर रहे थे!

रानी—भीमसिंह! तुम अगर मेरे पुत्र होते!

राज०—(लंबी साँस लेकर) रूठकर चला गया!

रानी—उसके बाद?

समर०—इसी समय राठौरोंकी सेना भी मेवाड़की सेनाके पास सहायताके लिए पहुँच गई। हमारी सेनाके पहुँचते ही शत्रुओंकी सेना तितर-बितर होकर जान लेकर भागी। हम लोगोंने बहुत दूरतक शत्रुओंका पीछा किया।

रानी—फिर?

समर०—पड़ावपर लौटकर आया, वहाँ भीमसिंह नहीं देख पड़े। दूसरे दिन सबेरे उनकी लाश युद्धभूमिमें देख पड़ी।

रानी—राणा साहब, आपके पुत्रने आज स्वदेशकी रक्षा की।

राज०—भीमसिंह! भीमसिंह! पुत्र पुत्र! (मूर्च्छित हो जाते हैं।)

पाँचवाँ दृश्य

स्थानः—मुगलोंका पड़ाव

समय—दोपहर

(शाहज़ादा अकबर और तहव्वरखाँ)

अकबर—क्या कहते हो तहव्वरखाँ, लड़ाईमें हम लोगोंकी पूरी हार हुई?

तहव्वर०—पूरी हार हुई, इस बारेमें जरा भी भूल नहीं।

अकबर—ये राजपूत कैसे बहादुर होते हैं। तोपके गोलेको दोस्तकी तरह बुलाते हैं और तलवारको खुशीसे अपने गले लगाते हैं!

तहव्वर०—लेकिन उनकी तलवार जबर्दस्ती आकर हमारे गलेसे लगती है!

अकबर—कैसी जात है! कैसी हिम्मत है! कैसा जोश है!

तहव्वर०—यह जात है तो अच्छी, लेकिन एक ऐब है शाहज़ादा साहब,—जान बचानेका मौका नहीं देती। एकदम धावा करके मरने-मारनेको तैयार हो जाती है। देखिए न कल रातको बेफिक्र होकर डेरेमें सो रहा था। बाहर आँधी और पानीकी हलचल मची हुई थी। ऐसे वक्तमें कोई भला आदमी घरसे निकलनेकी हिम्मत नहीं कर सकता। लेकिन इन बलाके बने हुए राजपूतोंने आँधी पानीकी कुछ

पर्वा नहीं की। वे उसी आँधी-पानीमें धावा करके हमारी छावनीमें घुस पड़े। अगर बर्छी, तलवार, भाले वगैरह लेकर न आये होते, तो मैं समझता कि दिल्लगी कर रहे हैं!

अकबर—सुभानअल्लाह! कैसी बहादुरी और दिलेरीके साथ धावा किया!

तहव्वर०—और हमारी फौज भी किस खूबसूरतीसे भागी! सुभानअल्लाह! ऐसी अँधेरी रातमें इस तरह भागी कि कोई ठोकर खाकर भी नहीं गिरा—यह क्या कम तारीफकी बात है?

अकबर—लेकिन इस हारका हाल सुनकर अब्बाजान क्या कहेंगे?

तहव्वर०—सो तो मैं ठीक ठीक नहीं बता सकता। लेकिन यह तय है कि मिठाई खानेको न देंगे। मुझसे तो चलते वक्त खूब साफ और सही उर्दूमें कह दिया था कि अगर इस लड़ाईमें मैं हारकर गया, तो मेरे दोनों हाथोंमें दो लोहेकी चूड़ियाँ पहना देंगे। यह ठीक ठीक नहीं मालूम कि लहँगा भी पहनाएँगे या नहीं।

अकबर—दिल्लगी रहने दो।—अब क्या किया जाय? राजपूतोंसे लड़कर जीतनेकी उम्मेद तो है नहीं।

तहव्वर०—बेशक। और इस जातसे लड़ना भी मेरी समझमें ठीक नहीं।

अकबर—क्यों?

तहव्वर०—ये लोग लड़ना ही नहीं जानते। उस दिन मेवाड़में देखा था? खाना-पीना बन्द करके मारनेका एक नया ढंग सोच निकाला। भला यह किस किताबमें लिखा है? उसके बाद यहाँ लड़ाई छिड़नेके पहले ही धावा कर दिया। अरे भाई, लड़ना हो तो लड़ो—तलवार लो, दो दफा आगे बढ़ो, दो दफा पीछे हटो, पैंतरे दिखाओ, चक्कर

काटो। यह क्या कि एकदम आकर एक तरफसे काटना शुरू कर दिया। जैसे हमारे सिरोंको बेवारिसी माल समझ लिया।

अकबर—नहीं तहव्वरखाँ, इस जातके ऊपर जितना ही मैं गौर करता हूँ उतना ही इनकी मुख़ालफत करनेको जी नहीं चाहता!—इन लोगोंकी मदद मिले, तो मैं सारी दुनियामें अपना सिक्का चला सकता हूँ।

तहव्वर—इन लोगोंकी मदद मिलनेसे आप सिक्का चला सकते हैं, न मिलनेसे तो नहीं?—अच्छा एक काम तो आप कर सकते हैं?

अकबर—क्या?

तहव्वर०—एँ—यह तो बहुत ही सहल काम है। अभीतक मुझे सूझा ही नहीं।—बहुत ही सीधा काम है। यह तो कुछ मुश्किल ही नहीं है!

अकबर—क्या! क्या!

तहव्वर०—मैं जितना सोचता हूँ, उतना ही सहल जान पड़ता है। सुनिए—आप बादशाह होना चाहते हैं?

अकबर—किस तरह?

तहव्वर०—किस तरह?—इतना छिपनेसे काम नहीं चल सकता।—पहले यह कहिए कि आप चाहते हैं या नहीं?

अकबर०—हाँ, चाहता हूँ।

तहव्वर०—मगर बादशाहत क्या गली-गली मारी-मारी फिरती है?

अकबर—तुम्हीं तो कहते हो।

तहव्वर०—विना कोशिशके कुछ नहीं हो सकता। सुनिए, बादशाहत पानेका एक बहुत ही सहल ढंग है।

अकबर—क्या! क्या!

तहव्वर०—यही राजपूतोंकी जात—हाः हाः हाः—है न बहुत सहल ?

अकबर—किस तरह ?—बहुत ही सहल है !

तहव्वर०—बहुत ही सहल है !—बकौल आपके राजपूतोंकी कौम बहुत अच्छी और जोरावर है। मान लीजिए, ये लोग अगर औरंगजेबको उतारकर आपको तख्तपर बिठा दें । कुछ हर्ज है ? हमारी फौज और राजपूतोंकी फौज अगर दोनों मिल जाँय ?

अकबर—मैं भी तो ठीक यही सोच रहा था।—सुभानअल्लाह !

तहव्वर०—अरे सुनिए । अखीर तक सुनिए—सवाल यह हो सकता है कि राजपूत लोग हमारे शरीक होंगे या नहीं ?—हमारे मारे तो उनका खाना-पीना हराम है !

अकबर—हाँ, यह सवाल तो हो ही सकता है !—एः बना बनाया खेल बिगाड़ दिया ।

तहव्वर—लेकिन इसका जवाब बहुत सहल है ।

अकबर—क्या ?

तहव्वर०—इसका जवाब यह है कि क्यों न शरीक होंगे ।

अकबर—वाह बहुत ही सहल जवाब है !

तहव्वर०—राजपूत लोग दाराकी तरफसे क्या नहीं लड़े ? खुद बादशाह (औरंगज़ेब) की तरफसे नहीं लड़े ?

अकबर—मैं भी तो वही कह रहा था।

तहव्वर०—मगर—

अकबर—फिर मगर !

तहव्वर०—लेकिन इस बारेमें इतमीनान कर लेनेकी जरूरत है। मैं कहता हूँ, राठौर दुर्गादासके जरिए उनकी मंशा दर्याफ्त कर लेनेसे सब साफ हो जायगा ।

अकबर—मैं भी तो वही कह रहा था। बस, तो तुम राजपूतोंके पड़ावमें जाओ।

तहव्वर—इस बारेमें मुझे उज्र है। दुर्गादास अगर उस वक्त उसी तरह तलवार खींचकर नाकके सामने घुमावे—और मुझे अपने धड़पर सिर न देख पड़े ?

अकबर—दुर्गादास तलवार न निकालेगा।

तहव्वर०—अगर निकाले ?

अकबर—तब कहना—हाँ !

तहव्वर०—तब 'हाँ' कहनेकी फुरसत ही कहाँ मिलेगी ? अगर मेरा सिर ही कटकर मेरे पैरोंके पास गिर पड़ा, तो फिर मैं 'हाँ' कहूँगा किस तरह ?

अकबर—तो फिर क्या करना चाहिए ?

तहव्वर०—एक ढंग है। दुर्गादासको यहीं बुलाओ। पहाड़ अगर मुहम्मदके पास नहीं जा सकता, तो मुहम्मद तो पहाड़के पास आ सकता है।

अकबर—बस—यह भी हो सकता है। मैं भी तो यही—

तहव्वर०—यह भी हो सकता है तो यही हो। सब गड़बड़ मिट गई न ? तो मैं अब जरा नाक बजाने जाता हूँ।

(बन्दगी करके तहव्वरखाँका जाना)

अकबर—(आप ही आप) बुरा क्या है ! इसके सिवा मेरे बादशाह होनेकी और कोई तदबीर भी तो नहीं देख पड़ती।—कमसे कम अज़मकी ज़िन्दगीमें। ओः ! कैसा बादल गरज रहा है !

[रजियाका प्रवेश]

रजिया०—अब्बा, बाहर आओ। पत्थर गिर रहे हैं— पत्थर गिर रहे हैं।

अकबर—गिरने दे।

रजिया—देखोगे नहीं !

(हाथ पकड़कर खींचती है।)

अकबर—हिश ! तू इतनी बड़ी हुई है ! तुझे ढिठाई करते शर्म नहीं मालूम होती ? जा।—

(उदास भावसे रजियाका प्रस्थान)

अकबर—देखूँ,—किनारे बैठकर लहरें गिननेसे क्या होगा ?—फाँदकर देखूँ ! जो होना होगा, होगा।

छट्ठा दृश्य

स्थान—मुगलोंका पड़ाव

समय—रात्रि

[मुकुट पहने हुए अकबर तख्तपर बैठे हैं। सिरपर छत्र लगा है। आसपास दो दासियाँ चँवर कर रही हैं। सामने मुसाहब और नर्तकियाँ हैं।]

अकबर—मैं बादशाह अकबर नंबर दो हूँ। क्यों न ?

१ मुसा०—हाँ।

अकबर—मेरे सिरपर ताज है न ?

२ मुसा०—जी हाँ।

अकबर—मेरा झंडा उड़ रहा है न?

३ मुसा०—जी हुजूर, खूब उड़ रहा है—फरफरा रहा है।

अकबर—बस! और कुछ न चाहिए, गाओ।

[बाजा बजता है।]

अकबर—ठहरो—बुड्ढा बादशाह इस वक्त क्या कर रहा है, बतला सकते हो?

१ मुसा०—भाग गया।

अकबर—ऊँहूँ—वह भागनेवाला नहीं है। वह लड़ेगा। यों छोड़ देगा? लेकिन लड़े, क्या डर है! मेरी तरफ दुर्गादास है, मैं किसीको नहीं डरता।—तुम लोग जानते हो दुर्गादासको?—उसे बुड्ढा बादशाह भी डरता है।

३ मुसा०—डरता है! हाः हाः हाः!

अकबर—बेहद डरता है!—उस दिन एक तसबीरवाला शिवाजी और दुर्गादासकी तसबीरें बनाकर बुड्ढे बादशाह—यानी मेरे अब्बा औरंगज़ेब—के पास लाया था। शिवाजीकी तसबीर देखकर अब्बाने कहा—इसको मैं काबूमें ला सकता हूँ; लेकिन यह दुर्गादास बलाका बना हुआ है—यह परेशान करेगा।

२ मुसा—दोनों तसबीरें किस ढंगसे खिंची थीं?

अकबर—शिवाजी तो गद्दीपर बैठे हुए थे, सिरपर ताज था, मत्थेमें टीका था। लेकिन दुर्गादास घोड़ेपर चढ़े हुए बर्छेकी नोकमें छेदकर भुट्टा भून रहे थे।

२ मुसा० —हमको तो सुननेहीसे डर लगता है, फिर बादशाह—

अकबर—बादशाह कौन है ?

१ मुसा०—(दूसरे मुसाहबसे) हाँजी, बादशाह कौन है ?

अकबर—बादशाह तो मैं हूँ।

१ मुसा०—जहाँपनाह ही तो बादशाह हैं, खुदावन्द !

अकबर—बस—तो फिर गाओ।

(बाजा बजता है।)

अकबर—हाँ सुनो, दुर्गादास कहाँ गया ? कोई जानता है ?

३ मुसा०—कहाँ ! हम लोग तो नहीं जानते।

अकबर—हाँ ठीक है—उदयपुर गया है।—मगर मुझसे हुक्म लिये बिना क्यों गया ?—क्यों गया ? मैं बादशाह हूँ—यह उसे खबर नहीं ?—क्यों गया ?

२ मुसा०—हाँ क्यों गया !

अकबर—हाँ—हाँ ! राणा राजसिंहकी बीमारीकी खबर पाकर गया है ! अच्छा, अबकी बार उसे माफ कर दिया।

२ मुसा०—हुजूर मा-बाप हैं।

अकबर—मैं बादशाह हूँ।

१ मुसा०—हाँ हुजूर ही तो बादशाह हैं—और कौन है ?

अकबर—बस तो गाओ।

गीत।

आहा क्या माधुरी विराजे।
नन्दन-कानन भुवन साजे॥ आहा०॥

पाँयन घुँघरू, रुन-झुन रुन-झुन, ताल-तालपै सुरन सोहने बाजे-
मधुर बीना मृदु मृदंग बाजे ॥ आहा० ॥

[इसी बीचमें रजिया आकर दूरपर एक तिपाईके ऊपर दाहिने हाथकी कोहनी रखकर—दाहिनी हथेलीपर ठोड़ी रखकर—गाना सुनती है।]

अकबर—सुभानअल्लाह ! अगर बहिश्तमें यह सामान हो, तो बेशक वह ऐश-आरामकी जगह है।

रजिया—भूपालीमें तो कड़ी-मध्यम नहीं लगती।

अकबर०—रजिया, तू यहाँ कहाँ ?

रजिया—होगी, मिश्र-भूपाली होगी—अब्बा, अम्मी बुला रही हैं।

अकबर—तेरी अम्मीके बापका सिर ! बुलानेके लिए क्या यही मौका था ?—एः सब मिट्टी कर दिया !

मुसाहब—सब मिट्टी कर दिया, जहाँपनाह, सब मिट्टी कर दिया !

अकबर—जा, भीतर जा।—तुझे शर्म नहीं लगती !—यहाँ भरे दरबारमें मौजूद हो गई !

रजिया—अम्मी बुला रही हैं, उनकी तबीयत बहुत बेचैन है।

अकबर—तो इससे क्या !—तबीयत अच्छी नहीं तो हकीमको बुलाओ। मैं क्या करूँगा !—मैं अभी न चलूँगा !

रजिया—उनकी जान निकल रही है। उन्होंने कहा है—"रजिया, तू उनसे जाकर कह कि मैं मरनेसे पहले एक बार उनको देखना चाहती हूँ।"

अकबर—देखना ! यह कैसे हो सकता है !—सब मिट्टी कर दिया—मरनेके लिए क्या और वक्त न था ! जा—ए ! तुममेंसे कोई इसे भीतर पहुँचा आओ !—ए ! कोई है ?

[दरबानका प्रवेश]

अकबर—इसको भीतर पहुँचा दे।—खींचकर ले जा—देख क्या रहा है ?—

दरबान—(रजियाका हाथ पकड़कर) चलिए शाहज़ादी !

रजिया—खबरदार—अब्बा, यह आप अपनी लड़कीकी बेइज़्ज़ती करा रहे हैं !

अकबर—कुछ नहीं। मेरा हुक्म है।

रजिया—तुम्हारा हुक्म है !—अब्बा !—

(अपमानसे रुआसी होकर रजियाका प्रस्थान)

अकबर—सब मिट्टी कर दिया ! सब मिट्टी कर दिया !—एँ—गाओ—नाचो—

(फिर बाजा बजता है। इसी समय तहव्वरखाँका प्रवेश।)

अकबर—कौन ! तहव्वरखाँ ? सिपहसालार ?

तहव्वर०—शाहज़ादा साहब—

अकबर—ए ! शाहज़ादा क्या ? कहो 'बादशाह'—'जहाँपनाह'—इधर—नहीं देखते ? (छत्र दिखलाना)

तहव्वर—देखता क्यों नहीं हूँ !—मैं इधर देखता हूँ, आप उधर जाकर देखें !

अकबर—क्यों ! उधर क्या हुआ !

तहव्वर०—उधर राजपूत लोग आपका साथ छोड़कर चले गये।

अकबर—छोड़कर चले गये ? तहव्वरखाँ, तुमने क्या कुछ नशा पिया है ? चंडू पिया है या ताड़ी ? राजपूत लोग छोड़कर चले गये, यह भी कहीं हो सकता है ?

तहव्वर०—हो सकता हो या न हो सकता हो, लेकिन हुआ वही है। घोड़ेकी किश्त बाजी मात।

अकबर—कैसे ?

तहव्वर०—शाहज़ादा साहब, राजपूतोंको किसीने यकीन करा दिया है कि आप बादशाहसे मिल गये हैं।

अकबर—अरे बादशाह कौन है और शाहज़ादा कौन है—एः ! तुमने आकर सब मिट्टी कर दिया !

तहव्वर०—बाहर आकर तो देखिए—एक भी राजपूत नहीं है, सब मिट्टी हो गया।

अकबर—कहते क्या हो !—और हमारी फौज ? (बाजे बजानेवालोंसे) अरे चुप रहो।

तहव्वर०—बादशाहसे मिल गई है।

अकबर—दग़ा ! दग़ा ! तहव्वरखाँ, यह तुम्हारी ही जालसाजी है।

तहव्वर०—शाहज़ादा साहब, आप शराब बहुत पी गये हैं। मेरी जालसाजी है ? पराये असगुनके लिए अपनी नाक कटाना ? मेरी गर्दन तो पहले मारी जायगी !—बस अब बाजी सँभालिए ! घोड़ेकी किश्त बाजी मात होती है !

अकबर—मैं समझ गया, यह तुम्हारा ही फरेब है।—पकड़ो, ए, कोई है ?

तहव्वर०—हाः हाः हाः ! इस वक्त कौन किसे पकड़नेवाला है शाहज़ादा ! और मुझे मार डालनेसे भी आपकी जान नहीं बच सकती !—एक बात सुनिए ! मैंने एक ढंग सोचा है। बीकानेरके राजाके पाससे मुझे एक खत मिला है कि अगर अब भी बादशाहके सामने हाजिर होकर माफी माँगिएगा, तो माफी मिल जायगी। यही कोशिश करके न देखिए। चलिए, बादशाहके पास चलें।

अकबर—अब्बाके पास ?

तहव्वर०—बुरा क्या है! मुझे अपनी गर्दनकी कुछ ज़्यादह पर्वा तो है नहीं। फिर भी देखूँ, खींच-खाँचकर किसी तरह उसे बनाये रख सकता हूँ या नहीं। कोशिश करके देखना क्या बुरा है! (प्रस्थान)

अकबर—यह क्या हुआ! राजपूत लोग तो दग़ाबाज़ नहीं होते।—वे भरोसा देकर छोड़ देंगे!—सब मिट्टी कर दिया! (मद्यपान) ए, कौन है!—कुछ पर्वा नहीं--नाचो--गाओ—

(फिर बाजा बजता है।)

सातवाँ दृश्य

स्थान—अजमेर। औरंगजेबके महलकी बाहरी बैठक

समय—रातके दस बजे

[औरंगजेब लेटे हुए हैं, सामने दिलेरखाँ खड़े हैं।]

औरंग०—दिलेरखाँ, राजपूतोंके पड़ावसे और कुछ खबर पाई है?

दिलेर०—उनकी तोपोंकी दिल दहलानेवाली आवाज़के सिवा और कुछ नहीं सुना। आवाज धीरे धीरे पास आती जाती है और साफ सुन पड़ती है।

औरंग०—उनके इस इरादेका मतलब?

दिलेर०—मतलब तो कुछ बहुत अच्छा नहीं जान पड़ता।

औरंग०—अकबर! अकबर! मुझे तख्तसे उतारकर तुम खुद बादशाह बनना चाहते हो? एक दिन तुम ही बादशाह होते!—तुम्हारे लिए इतनी कोशिश, इतनी मेहनत, इतना खर्च, सब बेकार हुआ।—दिलेरखाँ, मैंने यह कभी सोचा भी न था!

दिलेर०—मालूम नहीं, आपने क्यों नहीं सोचा। अकबर तो बादशाही चाल ही चले हैं! हाँ, यह अभीतक नहीं मालूम हुआ कि वह

मोअज़्ज़म, आज़म और कामबख़्शके साथ भी बादशाही बरताव करेंगे या नहीं।

औरंग०—दिलेरखाँ, मैं यही चाहता हूँ कि जिस खून-खराबेको करके मुझे बादशाह बनना पड़ा है, वह फिर न हो।

दिलेर०—मैं देखता हूँ, हुज़ूरकी राय इतने ही दिनोंमें बहुत कुछ बदल गई है।—आहा बादशाह सलामतके बुजुर्गवार बादशाह शाहजहाँ अगर इस वक्त ज़िन्दा होते, तो वे बहुत ही खुश होते।

औरंग०—ज़बान सँभालकर बात करो दिलेरखाँ!

दिलेर०—किस लिए हुज़ूर? दिलेरखाँ सच बोलनेमें कहीं नहीं हिचकता! आप क्या यह समझते हैं कि अगर हुज़ूर अपने बापसे वैसा सलूक न करते, तो भी अकबरको आज यह बात सूझती?—जहाँपनाह, मैं आपका दोस्त हूँ—मेरी बात मानिए। अब भी अच्छे काम करके पहलेके गुनाहोंको खुदासे माफ करानेकी कोशिश कीजिए। जाजिया बंद कर दीजिए। हिन्दुओंको दोस्त बनाइए। और क्या कहूँ जनाब, सब फसादोंकी जड़ जो यह काश्मीरी बेगम है उसे दूर कीजिए। नहीं तो अपने कियेका फल भोगनेके लिए तयार रहिए। (प्रस्थान)

औरंग०—(आप-ही-आप) बात तो सच है। सच बात तो कड़वी होती ही है। सच है। जो कर चुका हूँ, वही फिर होते देख पड़ता है।—दारा! भोले भाले साफ दिलके भाई दारा! माफ करो। मैंने बड़ा जुल्म—बड़ी बेदर्दी—की है।—लेकिन जो कुछ किया, सो इस्लामके लिए—खुदा गवाह है!

[श्यामसिंहका प्रवेश]

औरंग०—क्या ख़बर है राजासाहब?

श्याम०—सब ठीक हो गया जहाँपनाह, राजपूतोंने अकबरका साथ छोड़ दिया।

औरंग०—किस तरह ?

श्याम०—राजपूत लोग अपने घोड़ोंपर चढ़कर जोधपुरकी ओर चल दिये—मैंने अपनीं आँखों देखा है। शाहज़ादा अकबर नाच-गानमें मशगूल थे, उन्हें मालूम भी नहीं हुआ। वे अभीतक बेहोश हैं।

औरंग०—यह सब कैसे हुआ ?

श्याम०—हुजूर भूल गये ? बन्देकी सलाहसे जहाँपनाहने अकबरके नाम जो ख़त लिखा था—

औरंग०—कौन ख़त ?

श्याम०—वही, जिसमें लिखा था कि 'शाहज़ादे अकबर, तुम्हारी यह राय बहुत ठीक है कि राजपूत लोग जब शाही फौज़पर धावा करेंगे तब तुम पीछेसे उनपर धावा कर दोगे।' वह ख़त मैंने सेनापति दुर्गादासके भाई समरदासके हाथमें देनेके लिए आदमीसे कह दिया था। राजपूतोंने उस चिट्ठीकी बातपर विश्वास कर लिया है। यह समझकर कि राजपूतोंसे अकबरका मेल करना भी बादशाहकी चाल है, उन्होंने अकबरका साथ छोड़ दिया है।

औरंग०—सच राजासाहब ? मुझे यह ख़याल न था कि राजपूत लोग उस चिट्ठीपर यकीन लावेंगे। दुर्गादासने भी यकीन कर लिया है ?

श्याम०—दुर्गादास नहीं थे। वे राजसिंहकी बीमारीकी खबर पाकर उदयपुर गये हैं।

औरंग०—और तहव्वरखाँ ?—उसकी क्या खबर है ?

श्याम०—तहव्वरखाँ कैद कर लिया गया है। उसको मैंने चिट्ठी लिखी थी कि 'तुम अब भी अगर बागियोंका साथ छोड़कर अपनी फौज साथ लेकर हुजूरके पास आओगे और माफी माँगोगे, तो वे माफ कर देंगे।' उसपर विश्वास करके वह मुगलोंके पड़ावमें आया था। शाहज़ादा आज़मने वैसे ही उसे कैद कर लिया।

औरंग०—राजासाहब, मैं आपके इस कामसे हमेशा आपका एहसानमन्द रहूँगा।

श्याम०—यह हुजूरकी इनायत है।

औरंग०—वह बाहर काहेका शोरगुल हो रहा है?

श्याम०—देखता हूँ।　　(शंकित भावसे प्रस्थान)

औरंग०—यह क्या! शोरगुल बढ़ता ही जाता है।—हथियारोंकी झनकार! यह क्या! बन्दूककी आवाज़!—दरबान!

(खूनसे तर तहव्वरखाँका प्रवेश)

औरंग०—तहव्वरखाँ!

तहव्वरखाँ—हाँ जहाँपनाह! (बादशाहकी तरफ पिस्तौल तानता है)

दिलेरखाँ—(प्रवेश करके) खबरदार!

(तहव्वरखाँ एक बार घूमकर देखता है और फिर बादशाहकी खोपड़ीपर पिस्तौल तानता है। दिलेरखाँ पिस्तौल दागकर तहव्वरखाँको गिरा देता है।)

औरंग०—दग़ाबाज़ नमकहरामको सजा मिल गई! नमकहराम कुत्ता!

दिलेर०—मर गया जहाँपनाह, गाली एक भी न सुन सका!

औरंग०—दिलेरखाँ, तुमने आज मेरी जान बचाई।

दिलेर०—जहाँपनाह, इसमें तअज्जुब क्या हुआ ! आपकी जान बचानेके लिए ही तो तनख्वाह पाता हूँ।

औरंग०—दिलेरखाँ, मैंने तुमको अलग करके इस पठानको सिपहसालार बनाया था।—उसका यह नतीजा है ! मुझे माफ करो दिलेरखाँ।

दिलेर०—जहाँपनाह, मैं आपका एक मामूली खिदमतगार हूँ मुझसे आप यह क्या कहते हैं!

औरंग०—तुम खिदमतगार नहीं हो। इस दुनियामें तुम्ही एक मेरे सच्चे दोस्त हो। क्या इनाम चाहते हो दिलेरखाँ?

दिलेर०—मैं जहाँपनाहकी जान बचा सका, यही मेरे लिए सबसे बढ़कर इनाम है।—मैं और कुछ नहीं चाहता।

औरंग०—दिलेरखाँ, तुम बड़े ऊँचे ख़यालके आदमी हो!

आठवाँ दृश्य

स्थान—राजपूतोंका पड़ाव

समय—सन्ध्याकाल

(दुर्गादास और राजपूत सरदार बैठे हैं।)

दुर्गादास—विजयसिंह, अबकी सचमुच हमने धोखा खाया।

समरदास—तुमने इतने दिनोंतक मुगलोंको पहचाना नहीं दुर्गादास !

विजयसिंह—मुझे ख़याल न था कि अकबर ऐसा दग़ाबाज निकलेगा।

मुकुन्दसिंह—देखनेमें बहुत ही सीधा जान पड़ता था।

गोपीनाथ—वह है तो बिलकुल ही निकम्मा। चौबीस घंटे गाने-बजानेमें मगन रहता है।—मगर ऐसा आदमी तो कपटी नहीं होता।

समर०—गोपीनाथ, मुग़लके बच्चेके लिए सब संभव है ।—मैं पानीका विश्वास कर सकता हूँ, गढ़ेका विश्वास कर सकता हूँ, सर्पका विश्वास कर सकता हूँ, मगर मुग़लके बच्चेका विश्वास नहीं कर सकता। कपट उसकी जातिका धर्म है, वह क्या करे ?

गोपी०—सेनापति, राणा राजसिंहकी मृत्यु कैसे हुई ?

दुर्गा०—सो तो ठीक मालूम नहीं हुआ, कुमार भीमसिंहकी मृत्युका संवाद सुनकर वे मूर्च्छित हुए थे, फिर होश नहीं आया ।

[दरबानका प्रवेश]

दरबान—(प्रणाम करके) स्वामी, शाहज़ादा अकबर परिवार-सहित द्वारपर खड़े हैं ।

विजय० —अकबर ?

दुर्गा०—परिवार-सहित ?

समर०—सावधान ! इसमें भी कुछ चाल है । भीतर न आने देना।

दुर्गा०—नहीं, उनकी सुन तो लो । दोस्तके साथ एक आध दफा मुलाकात न भी की जाय तो कुछ हर्ज़ नहीं भैया, मगर शत्रुको यों न लौटाना चाहिए । (दरबानसे) उनको आदरके साथ भीतर ले आओ । (दरबानका प्रस्थान)

मुकुन्द०—इसके माने ?

समर०—फिर कुछ धोखा देने आया होगा-सावधान दुर्गादास !

गोपी०—इस युद्धमें क्या विस्मयोंका अन्त ही न होगा !

दुर्गा०—शाहज़ादेका सब लोग यथोचित सम्मान करना ।

[सपरिवार अकबरका प्रवेश]

(सब लोग उठ खड़े होते हैं ।)

दुर्गा०—आज हमें यह इज्जत देनेका क्या कारण है शाहज़ादा साहब ?

अकबर—राठौर सरदार, मुझे धोखा दिया गया।

समर०—आपको धोखा दिया गया? या हमने धोखा खाया?

अकबर—शायद दोंनोंने धोखा खाया। राजपूतोंने मेरा मददगार होना मंजूर करके, मुझे बादशाह बनाकर, जब मैं बैखटके होकर बादशाहका बागी बन बैठा, तब मेरा साथ छोड़ दिया।

समर०—झूठ बात है।

रजिया—सिपाही,—अब्बाकी बेइज्जती न करना! (आँखोंमें आँसू भरे हुए दीन दृष्टिसे दुर्गादासकी ओर देखती है।)

दुर्गा०—जरा चुप रहो भैया।—शाहज़ादा साहब, राजपूतोंने बिना किसी कारणके आपका साथ नहीं छोड़ा। राजपूत लोग विश्वासघातक नहीं होते। बादशाहकी यह चिट्ठी पढ़कर इन लोगोंने समझा कि राजपूतोंसे मिलकर आप धोखा देना चाहते हैं।—पढ़िए, यह चिट्ठी। (चिट्ठी देना)

अकबर—(पत्र पढ़कर) दुर्गादास, सब झूठ है।

समर०—क्या झूठ है?—ये बादशाहके दस्तखत नहीं हैं?

अकबर—दस्तखत तो बादशाहके ही हैं। लेकिन इस ख़तमें जो कुछ लिखा है वह सरासर झूठ है। हम लोगोंमें फूट डालनेके इरादेसे यह ख़त लिखा गया है। यह ख़त मेरे नाम लिखकर राजपूतोंके पास भेजा गया है। नहीं तो यह ख़त मेरे पास न पहुँचकर राजपूतोंके सिपहसालारको क्यों मिलता? मुगल-सिपाही क्या राजपूत और मुगलको न पहचानता होगा? अगर ऐसा ही होता, इस ख़तकी बात सच होती, तो ऐसे कामकी ख़बर इस तरह तुम लोगोंको न मिल जाती।

दुर्गा०—(सबकी तरफ देखकर) क्या कहते हो?

समर०—हम यह कुछ सुनना नहीं चाहते। हम लोगोंको मुगलोंने बराबर धोखा दिया है। हम उन मुगलोंसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहते।

अकबर—राठौर सरदार, मुझे किसी तरफका न रखकर आफ़तमें न डालना। मैं तुमसे पनाह चाहता हूँ।

दुर्गा०—सब सामन्तोंकी क्या सलाह है?

विजय०—मैं तो कहता हूँ कि मुगलोंसे कुछ भी सम्बन्ध न रखना ही अच्छा है।

मुकुन्द०—मेरी भी यही राय है। मुगलोंसे हम एक ही जगह—सिर्फ युद्धके मैदानमें—मिलना चाहते हैं।

जगत०—मैं भी यही कहता हूँ। हम मुगलोंसे मित्रता नहीं चाहते। हम युद्ध करना जानते हैं—युद्ध ही करेंगे।

दुर्जन०—सेनापति, मेरी भी यही सलाह है। शाहज़ादा मुगलोंके पड़ावको लौट जायँ—अपने पितासे जाकर क्षमाकी प्रार्थना करें। बादशाह अवश्य अपने लड़केको क्षमा कर देंगे।

अकबर—तो शायद आप लोग उनको नहीं पहचानते।

समर०—खूब पहचानते हैं। और अधिक पहचाननेकी जरूरत नहीं है।—लौट जाइए शाहज़ादा साहब!

अकबर—(दुर्गादाससे) राठौर सरदार, मैं तुमसे पनाह माँगता हूँ।

दुर्गा०—सामन्तगण, क्षत्रियका धर्म है आश्रय देना।

समर०—साँपको दूध पिलाना क्षत्रियोंका धर्म नहीं हो सकता।

अकबर—मुझपर भरोसा कीजिए—मेरे साथ चालाकी की गई है।

दुर्जन०—संभव है। तो भी तुम्हारे बीचमें न पड़ना ही हम अच्छा समझते हैं।

अकबर—यही क्या सब सभाकी राय है? राजपूत आज अपना फर्ज़ भूलकर पनाह देनेसे मुँह मोड़ते हैं?

(सब चुप हो रहते हैं।)

दुर्गा०—शरणागतकी रक्षाके लिए कोई राजी नहीं है?

सब—हम लोग शत्रुको आश्रय न देंगे।

अकबर—सरदार, मैं बादशाहका लड़का हूँ। मुझे धोखा दियां गया है, मैं मुसीबतमें पड़ा हूँ। मैं अपने लड़की-लड़कोंके साथ घुटने टेककर तुमसे पनाह माँगता हूँ (पुत्र और कन्यासे) घुटने टेको शाहज़ादे! घुटने टेको शाहज़ादी!

रजिया—(घुटने टेककर, आँखोंमें आँसू भरकर) दुर्गादास, अब्बाको बचाओ।

दुर्गा०—किसीकी राय नहीं है?

सब—हममेंसे किसीकी राय नहीं है।

दुर्गा०—अच्छी बात है। तो अकेला मैं राजी हूँ।—सामन्तगण, दुर्गादास अपनेको क्षत्रिय समझता और बतलाता है। आश्रय माँगने-वाले शरणागतको वह कभी विमुख नहीं कर सकता। सामन्तगण, तुम्हारा जी चाहे मुझे छोड़ दो। मैं आश्रितको नहीं छोड़ सकता।—चलिए, आइए शाहज़ादा साहब, जबतक दुर्गादासके प्राण हैं, तबतक किसीकी मजाल नहीं कि आपका बाल बाँका कर सके।

(पर्दा गिरता है।)

चौथा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—दिल्ली, दरबारका कमरा

समय—प्रातःकाल

(शाहज़ादा मोअज्जम और दिलेरखाँ दोनों खड़े हैं।)

दिलेर०—दुर्गादास अकबरको लेकर दक्खिनको चले गये ?

मोअज्जम—हाँ दिलेरखाँ, अकबरको पनाह देनेके सबब सब राजपूतसरदारोंने उसे छोड़ दिया है। अब दक्खिनमें संभाजीके पास जानेके सिवा उसके लिए कोई चारा न था।

दिलेर०—शाबास दुर्गादास !

मोअज्जम—सिर्फ पाँच सौ राजपूत, जो उसके खास जाँ-निसार साथी थे, उसके साथ गये हैं। मैंने फौज लेकर उसे घेर लिया था; परन्तु एक दिन रातको दुर्गादास अपने पाँच सौ साथियोंको साथ लिये मुगलोंकी फौजको बीचसे चीर-फाड़कर निकल गया।—पीछेसे सुना कि वह दक्खिनको गया है।

दिलेर०—शाबास दुर्गादास ! शाबास !

मोअज्जम—बादशाहके हुक्मसे शाहज़ादे अकबरको पकड़ा देनेके लिए मैंने रिश्वतके तौर पर ४०,००० मोहरें दुर्गादासके पास भेजी थीं। दुर्गादासने वे मोहरें अकबरको दे दीं। खुद एक कौड़ी भी नहीं ली।

दिलेर०—वाह वाह ! शाबास दुर्गादास !

मोअज्जम—अब मारवाड़की फौजका सिपहसालार कौन है ?

दिलेर—दुर्गादासके भाई समरदास ।

मोअज्जम—अकबरके लड़की-लड़के कहाँ हैं ?

दिलेर०—उन्हींके पास हैं। अकबरकी बेगम मर गई। शाहज़ादी रजिया समरदासके पास है।

(आज़मका प्रवेश)

आज़म—दिलेरखाँ, बादशाह सलामत चाहते हैं कि राजपूतोंसे सुलह कर ली जाय। यही बात तुमसे कहनेके लिए बादशाहने मुझे भेजा है।

दिलेर०—क्या ! सुलह ! सच शाहज़ादा साहब ? बादशाह क्या सचमुच सुलह चाहते हैं ?

आज़म—हाँ दिलेरखाँ ?

दिलेर०—खुदा उनका भला करे।—सुलहका पैगाम कौन भेजेगा ? मैं या खुद बादशाह सलामत ?

आज़म—राजपूत।

दिलेर०—राजपूत भेजेंगे ? वे ही जीते और वे ही सुलहका पैग़ाम भेजेंगे ?

आज़म—जहाँपनाह कहते हैं कि हम सुलहका पैगाम नहीं भेज सकते। वैसा करनेमें हमारी बेइज्ज़ती होगी।

दिलेर०—इसीसे उनकी इज्जत बचानेके लिए जीते हुए राजपूत सुलहका पैग़ाम लेकर आवेंगे ?—यह बात किसने बादशाहसे कही है ?

आज़म—बीकानेरके राजा श्यामसिंहने। उन्होंने कहा है कि बादशाही इज्जतका ख्याल रखकर वे सुलह करा देंगे।

दिलेर०—समझा। तो यह भी बादशाहकी पहलेकी ऐसी दग़ा-बाज़ीकी सुल्ह है।

आज़म—दिलेरखाँ, ज़बान सँभालकर बात करो।

दिलेर०—(स्वगत) हूँ! साँपसे बढ़कर उसका बच्चा ज़हरीला होता है। (प्रगट) जाइए शाहज़ादा साहब, बादशाहसे जाकर कहिए कि अगर बादशाह सचमुच राजपूतोंसे ईमानदारीकी सुल्ह करना चाहते हैं, तो मैं ऐसी शर्त्तसे सुल्ह करा दूँगा कि बादशाहकी बिल्कुल बेइज्जती न होने पावेगी।—और अगर इस सुलहमें कोई चाल है, तो उनसे कहना कि मैं शरीक नहीं हूँ। (प्रस्थान)

मोअज्जम—अब्बाजान एकाएक सुल्ह क्यों करना चाहते हैं आज़म?

आज़म—वे इस वक्त दक्खिन जाना चाहते हैं। इसके लिए पचास हजार तंबू बनवाये गये हैं।

मोअज्जम—क्या अकबरको पकड़नेके लिए वे दक्खिन जाना चाहते हैं?

आज़म—यही जान पड़ता है।—मोअज्जम, तुम अकबरको पकड़कर नहीं ला सके—इससे बादशाह सलामत तुमपर बहुत नाराज़ हैं। यहाँ तक कि उन्हें शक है कि तुमने जान-बूझकर अकबरको निकल जाने दिया है।

मोअज्जम—यह बात बिल्कुल झूठ नहीं है। आज़म, बादशाहके गुस्सेकी आगमें अपने भोलेभाले कमज़ोर भाईको डाल देना मैंने मुनासिब नहीं समझा। वह दुर्गादासके पास मजेमें है।

आज़म—तो तुमने मोअज्जम, जान-बूझकर बादशाहकी मर्ज़ीके ख़िलाफ यह काम किया है?

मोअज्जम—हाँ आज़म, बाप बाप है, लेकिन भाई भी भाई है।

(प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—जोधपुरका महल

समय—प्रातःकाल

(रेशमी कपड़े पहने रानी महामाया अकेली खड़ी हैं।)

रानी—मेरा काम समाप्त हो गया। मेरे परलोकवासी स्वामीका राज्य शत्रुके हाथसे निकल आया। मारवाड़से मुग़ल निकल गये। बस, अब काम पूरा हो गया। अब मैं सती-धर्मका पालन करूँगी। आज स्वामीके पास यात्रा करूँगी। आज जलती हुई चितामें इस शरीरको छोड़ूँगी। आज जलकर सब कष्टोंसे छुटकारा पाऊँगी। (घुटने टेककर) प्रभो! स्वामिन्! प्राणवल्लभ! एक दिन जब तुम युद्धमें हारकर आये थे, तब मैंने स्वाभिमानके मारे गढ़का फाटक बन्द कराकर युद्ध-भूमिमें तुम्हारी मृत्युकी कामना की थी। देखो नाथ! हम, जैसे देशके लिए तुमसे मरनेको कहती हैं, वैसे ही हम भी तुम्हारे लिए हँसते हँसते मर सकती हैं।

(" बन ठन कहाँ चली—बन ठन० " इत्यादि गाते हुए रजियाका प्रवेश)

रजिया—रानी, आप क्या कर रही हैं?

रानी—मैं जाती हूँ रजिया।

रजिया—यह क्या? कहाँ?

रानी—(ऊपर उँगलीका इशारा करके) वहाँ—जहाँ मेरे स्वामी इतने दिनोंसे मेरी राह देख रहे हैं।

रजिया—आपके शौहर राह देख रहे हैं ?—वहाँ ? कहाँ, मुझे तो नहीं देख पड़ते।—

रानी—और कोई नहीं देख सकता शाहज़ादी !

रजिया—आप क्या देख पाती हैं ?

रानी—देख क्यों नहीं पाती रजिया !

रजिया—मुझे यकीन नहीं आता। मुझे नहीं देख पड़ते, और आप देखती हैं ?—यह हो ही नहीं सकता।—

रानी—भोलीभाली लड़की, तेरा जन्म औरंगज़ेबके वंशमें हुआ है।

रजिया—अच्छा कुअँरको आप किसके पास छोड़ जाती हैं ?

रानी—तुम लोगोंके पास।

रजिया—भई मुझसे उनकी देख-रेख न होगी। आप तो अपने लड़केको छोड़ जायँगी—और मैं उन्हें देखूँगी ! कभी न देखूँगी।

रानी—मुझे तो जाना ही होगा रजिया, मेरे स्वामी बुला रहे हैं।

रजिया—आप अपने शौहरको लड़केसे बड़ा समझती हैं ?

रानी—हिन्दुओंकी औरतोंका यही धर्म है—शाहज़ादी, स्वामी ही सती स्त्रीका सर्वस्व है—पति ही पतिव्रताके लिए सब कुछ है। अभीतक काम बाकी था, इसीसे उनको छोड़कर यहाँ थी। अब मेरा काम पूरा हो गया है। मैं उनके पास जाऊँगी।

रजिया—काम पूरा हो गया, इसके क्या माने ? काम कहीं ख़तम होता है ? नहीं, मैं तो देखती हूँ कि आप किसी तरह नहीं जा सकतीं।

रानी—नहीं बेटी, ऐसा न कहो।

(समरदासका प्रवेश)

रजिया—यह क्या बात है ! यह भी कभी हो सकता है ?—यह तो हो ही नहीं सकता।—ये देखो सरदार आ गये ! (समरदाससे)

आप ही कहिए, यह कहीं हो सकता है ?—क्यों सरदार साहब ?

रानी—क्यों नहीं हो सकता रजिया ?

रजिया—क्यों नहीं हो सकता, सो तो मैं नहीं जानती। लेकिन यह अच्छी तरह समझती हूँ कि यह नहीं हो सकता।—सरदार साहब, आप ही कहिए, यह हो सकता है ?

रानी – अवश्य हो सकता है बेटी, मुझे सती होने दो—मैं जाऊँगी। अजित कहाँ है समरदास ?

समर०—भीतर हैं, रो रहे हैं।—मैं कुअँरको समझा नहीं सका रानीजी; और क्या कहकर समझाता ?

रानी—वह क्या कहता है ?

समर०—कुँअर कहते हैं,—'मैं माको जाने न दूँगा।'

रानी—उसे यहाँ ले आओ समरदास !

(समरदासका प्रस्थान)

रानी—भगवन् !—सतीधर्म-पालन करनेके लिए मेरे हृदयमें बल दो। सबसे कठिन काम यही है—लड़केको छोड़ जाना (हृदयपर हाथ रखकर) भगवन् !—

(अजितको लेकर समरसिंहका प्रवेश। साथ साथ कासिम भी आता है !)

रानी—कुँअर ! बेटा अजित !—मेरे बच्चे !—मैं जाती हूँ—मुझे जाने दो लाल !

अजित०—मा, तुम जाती हो—मुझे छोड़कर तुम कहाँ जातीं हो मा ?

रानी—जहाँ सब लोग एक दिन जाते हैं।—कोई दो दिन आगे जाता है और कोई दो दिन पीछे।—अजित, मुझे जाने दो बेटा !

अजित०—जाने दूँ ! (कम्पित स्वरसे) मा !—

रानी—किसीकी मा सदा नहीं रहती अजित !

अजित०—किसीकी मा अपनी इच्छासे इस तरह सन्तानको छोड़कर नहीं जाती मा !

रानी—मगर यह तो सती स्त्रीका धर्म है अजित !

रजिया—लेकिन माका क्या यही धरम है रानी ?

रानी—छिः अजित, रोते क्यों हो !—मुझे जाना ही होगा।

अजित०—अगर जाना ही होगा, तो जाओ। जाना चाहती हो, मुझे छोड़कर जा सको—जाओ, मैं न रोकूँगा।

रानी—प्रसन्न होकर मुझसे जानेके लिए कहो बेटा !

अजित—मैं जानेके लिए नहीं कहूँगा।

रानी—समरदास, कुँअरको समझाओ।

समर०—अजित, तुम्हारी माका यही सती-धर्म है। इस धर्मके पालनमें बाधा डालना तुम्हें उचित नहीं।

रजिया—धरम ! सरदार,—लड़की-लड़के छोड़कर, उन्हें दूसरोंको सौंपकर, मर जाना धरम है ?—इसे तुम धरम कहते हो ?—

समर०—शाहज़ादी, धर्मका विचार करना हमारा काम नहीं है। जो सनातन धर्म है, उसका पालन करना ही हमारा काम है। उसके आगे हमारा सिर झुकाना ही सोहता है। जो लोग इसे धर्म ठहरा गये हैं, वे हमसे सब बातोंमें बहुत बड़े थे।

अजित०—तो तुम मा हमको छोड़ जाओगी—(कम्पित स्वरसे) यह तुम्हें अच्छा लगता है ? यही ठीक जान पड़ता है ?—कष्ट नहीं मालूम होता ?

समर०—कष्ट नहीं मालूम होता ! (कम्पित स्वरसे) अजित, यह क्या तुम्हारी ही मा हैं, मेरी नहीं हैं ? सारे मारवाड़की मा नहीं हैं ?—

तो भी इन्हें जाने देना होगा अजित, (फिर कुछ प्रकृतिस्थ होकर) यह भी देव-प्रतिमाको विसर्जन करना है ! लड़कीको सुसरालके लिए बिदा करना है !—कष्ट होनेके कारण नियमको कोई नहीं लाँघ सकता।

अजित०—मैं यह कुछ नहीं समझता। मैं अपनी माको न छोड़ूँगा।

(रोता है।)

(निरुपाय होकर रानी फिर समरदासकी तरफ देखती हैं।)

समर०—अजित, तुम क्षत्रियके बच्चे हो—तुम्हारा यों रोना—यों बेजा हठ करना—अच्छा नहीं मालूम होता।—तुम्हारी ही अवस्थामें वीरवर बादलने चित्तौरके लिए, कर्त्तव्यके लिए, प्राणपणसे युद्ध किया था और तुम बच्चोंकी तरह, औरतोंकी तरह, रोने बैठे हो ! छिः !—माको प्रणाम करो अजित।—

(अजित चुपचाप प्रणाम करता है।)

रजिया—हाय ! बेचारे कुँअर !

समर०—(कुँअरसे) अब जाओ।

रानी—कासिम, इस अपने सर्वस्व पुत्रको तुम्हें सौंपे जाती हूँ।

(कासिमके साथ अजितका चुपचाप प्रस्थान।)

रजिया—ऊँहूँ। यह ठीक नहीं होता। किस जगह भूल है, सो मेरी समझमें नहीं आता, लेकिन यह साफ जान पड़ता है कि यह ठीक नहीं हो रहा है। जाऊँ, बेचारे कुँअरको समझाऊँ। (प्रस्थान)

रानी—भगवन्, भगवन् ! इसीके लिए क्या तुमने स्त्री-जातिको पैदा किया था ? स्त्रीके हृदयमें स्नेह भर दिया था—उसे पीड़ा पहुँचानेके लिए ? स्त्रीके हृदयमें ममता दी थी—उसे जलानेके लिए ? (सिर झुकाकर) अच्छा बिदा होती हूँ समरदास,—क्यों, चुप क्यों हो ?

समर०—जाओ माता, हिन्दू होकर किस तरह कहूँ कि तुम सती न होओ। जाओ माता, प्रणाम।

रानी—दुर्गादाससे मेरा आशीर्वाद कहना।

(समरदास सिर झुकाकर धीरे धीरे दूसरी ओरसे जाते हैं।)

[पर्दा बदलता है।]

[चिता जल रही है, रानी और स्त्रियाँ खड़ी हैं, स्त्रियोंका गान]

गीत

सती, पतिके निकट जाओ, पतिव्रत-पुण्य-फल पाओ।
बिना पतिके सतीकी और गति है कौन ?-बतलाओ॥
जगतके शोक-दुख जल राख होवें साथ ही तनके।
जननि, तुम लोक अक्षय स्वर्गको पाओ, वहाँ जाओ॥
उधर देखो, गगनमें देवता हैं फूल बरसाते।
सुनो, जयभेरियाँ वे बज रही हैं: देवि तुम जाओ॥

(रानी चितामें कूद पड़ती है, स्त्रियाँ गाती हुई जाती हैं।)

तीसरा दृश्य

स्थान—अजमेर। शाही महलकी बैठक

समय—प्रातःकाल

[औरंगजेब और दिलेरखाँ]

दिलेर०—जहाँपनाह, राजपूतोंसे सुलह हो गई। राठौर समरदास इस सुलहके लिए किसी तरह राजी नहीं होते थे। उन्होंने कहा—इस सुलहमें चाल है।

औरंग०—फिर किस तरह उसे राजी किया दिलेरखाँ ?

दिलेर०—मैंने उनके यकीनके लिए अपने दोनों लड़कोंको वहीं छोड़ आनेके लिए कहा, तब वे राजी हुए।

औरंग०—किस शर्तपर सुलह हुई ?

दिलेर०—इस शर्तपर कि चित्तौर और उसमें लगनेवाले और शहर वगैरह राजपूतोंको फेर दिये जायँगे; हिन्दुओंके मन्दिर वगैरहपर आइन्दा कुछ जुल्म न होगा। जोधपुरके राजाको उनका राज्य फेर देना होगा और राणा भी पहलेकी तरह अपनी फौजसे हमेशा बादशाहकी मदद करेंगे।

औरंग०—राणा अपनी फौज़से हमारी मदद करेंगे ? राणा जयसिंहने यह मंजूर कर लिया है ?

दिलेर०—पूरी तौरसे मंजूर कर लिया है। इस सुलहको सबसे ज़्यादा उन्हींने पसंद किया है। समरदास पहले उन्हें 'कायर' 'आराम-तलब' वगैरह कहकर सभासे उठकर चले गये। राणा सिर झुकाकर चुप रह गये।

औरंग०—फिर ?

दिलेर०—फिर एक दफा सब राजपूत जमा हुए। फिरसे नया सुलहनामा लिखा गया। समरदास बोल उठे कि 'मुगलोंका एतबार क्या ?' तब मैं अपने दोनों लड़कोंको वहाँ छोड़ आनेको तैयार हो गया। इसपर भी बड़ी मुश्किलसे समरदास राजी हुए।

औरंग०—तुम अपने दोनों लड़के वहाँ छोड़ आये हो ?

दिलेर०—हाँ जहाँपनाह !

औरंग०—दिलेरखाँ, तुम बहुत बड़े आदमी हो।—मैं इस सुलहकी शर्तें निबाहूँगा।

दिलेर०—हुजूरका एकबाल बलन्द हो।—

(श्यामसिंहका प्रवेश)

श्याम०—राजाधिराज बादशाह औरंगजेबकी जय हो !

औरंग०—क्या ख़बर है राजासाहब !

श्याम०—सब काम बन गया खुदावन्द !—इस तरह काम बन-जानेकी आशा न थी।—अब बादशाहका काँटा जाता रहा।

औरंग०—कैसे ?

श्याम०—सुलहके बाद कुछ ब्राह्मणोंके द्वारा बिगड़े-दिल समर-दासको मैंने मरवा डाला।

दिलेर०—क्या उनको मरवा डाला राजासाहब ?—सच ?

श्याम०—हाँ सच !

दिलेर०—तुमने उनको मरवा डाला ?

श्याम०—हाँ दिलेरखाँ !

दिलेर०—हुजूर माफ करें—(श्यामसिंहकी गर्दन पकड़कर) पाजी बुज़दिल ! तू राजपूत है ? आज मैं तुझे जीता न छोड़ूँगा।

श्याम०—(कातर भावसे औरंगजेबकी तरफ देखकर) जहाँपनाह !

औरंग०—छोड़ दो दिलेरखाँ—यह बहुत ही मामूली आदमी है। मच्छड़ मारकर हाथ काले न करो दिलेरखाँ !

दिलेर०—सच है। तुझे मारकर ये हाथ काले न करूँगा। तू दोज़खके कीड़ोंसे भी गया गुजरा है ! तुझे देखनेसे भी गुनाह होता है !—तुझे हाथसे छूना भी बड़ा भारी गुनाह है—दूर हो !—

(श्यामसिंहको धक्का देकर दूर कर देना)

दिलेर०—हाथ धो आऊँ हुजूर।　　(प्रस्थान)

औरंग०—दिलेरखाँ, मेरे लिए तुमको दोनों लड़कोंसे हाथ धोना पड़ा। इसके लिए म जिम्मेदार नहीं हूँ, दोस्त। यह खून मेरी रायसे नहीं हुआ है। इतनी ओछी तबीयतका आदमी मैं नहीं हूँ।

[मोअज्जमका प्रवेश]

मोअज्जम—हुज़ूरने बुलाया है ?

औरंग०—हाँ मोअज्जम,—दक्खिन जानेके लिए सारी मुगलोंकी फ़ोजको हुक्म दो। तुम भी तैयार रहो।

मोअज्जम—जो हुक्म। (दोनोंका प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान—दक्खिन पालगढ़का किला

समय—रात्रि

[मराठोंके राजा संभाजी, दुर्गादास और अकबर बैठे हैं।]

संभाजी—दुर्गादास, तुमने बड़ा साहसका काम किया। सिर्फ ५०० घुड़सवार लेकर जोधपुरसे पालगढ़ चले आये !

अकबर—हमको आये बहुत दिन हुए। इतने दिनोंतक महाराजके दर्शन ही नहीं मिले।

संभाजी—शाहज़ादा साहब, म राज्यके एक खास काममें लगा हुआ था। इसीसे देर हो गई। माफ कीजिएगा शाहज़ादा साहब, आपकी मेहमानदारीमें—आदर-सत्कारमें—तो कुछ कसर नहीं हुई ?

अकबर—नहीं महाराजके सरदारोंने बड़ी इज्जतसे मुझको रक्खा है। मेहमानदारीम काई कसर नहीं की गई।

संभाजी—शाहज़ादा साहब, आपकी बेगम और बच्चे कहाँ हैं ?

दुर्गा०—उन्हें मारवाड़की रानीके पास छोड़ आना पड़ा है। उन-पर बादशाहकी नाराज़गी नहीं है। केवल शाहज़ादेको आप आश्रय दें।

संभाजी—आप अपने लिए कुछ चिन्ता न करें शाहज़ादा साहब आप अपनेको इस समय लोहेके किलेमें समझिए।—दुर्गादास, तुमने इनको बादशाह बनाया था ?

दुर्गा०—हाँ बनाया था महाराज।

संभाजी—बस, अकबरशाह, हम मराठे भी आजसे आपको बादशाह मानते हैं।

अकबर—मेरा भाई मौअज्जम बहुतसी फौज लेकर मुझे पकड़नेके लिए आ रहा है।

दुर्गा०—शाहज़ादा आज़म भी सेना लेकर अहमदनगर आ गये हैं।

संभाजी—कुछ डर नहीं है शाहज़ादा साहब, मैं खुद बरहमपुरमें जाकर आपको बादशाह बनाऊँगा।

(संभाजीके दो सेनापति सन्तूजी और केशवका प्रवेश)

सन्तूजी—जंजिरागढ़ जीत लिया गया महाराज !

संभाजी—अच्छी बात है, मैं बहुत खुश हुआ।

केशव—महाराज, कर्नल केरी और फर्डीनेंड मुलाकात करना चाहते हैं। क्या उन्हें यहाँ ले आऊँ ?

संभाजी—ले आओ, हर्ज़ क्या है !

(सन्तूजी और केशवका प्रस्थान)

संभाजी—दमभरकी फुरसत नहीं है शाहज़ादा साहब—राजाके पीछे राज-काज लगा ही रहता है। महीने [1]से अधिक हुआ, अंगरेजोंने यह जंजिराका किला तैयार किया था। वह मिट्टीमें मिला दिया गया !—दुर्गादास, राजपूत लोग युद्ध करना जानते हैं ?

दुर्गा०—राजपूत लोग देशके लिए प्राण देना जानते हैं।

संभाजी—मगर राजपूत जाति तो बारबार यवनोंके द्वारा पददलित हुई है।

दुर्गा०—सच है। मगर सोचिए महाराज, आर्यावर्तमें राजस्थान एक रजकणके बराबर है। तब भी आर्यावर्त्तभरमें केवल राजपूत ही तीन सौ वर्षसे सिर उठाये हुए हैं।

संभाजी—और मराठे लोग केवल मस्तक ही ऊँचा नहीं किये हैं—वे मस्तक बना रहे हैं—तब किसकी अधिक शक्ति है दुर्गादास ?

दुर्गा०—मैं यह नहीं कहता कि मराठोंमें बल नहीं है। मेरे कहनेका मतलब यह है कि राजपूत लोग भी शक्तिशाली हैं—उनकी भी कलाइयोंमें बल है।—महाराज, मेरे यहाँ आनेका प्रधान उद्देश्य है शाहज़ादा अकबरको सुरक्षित करना।

संभाजी—अच्छा, आये हो तो देखे जाओ, मराठे किस तरह युद्ध करते हैं। देशमें जाकर लोगोंसे कहने योग्य एक बात मालूम हो जायगी।

दुर्गा०—(स्वगत) इतना घमंड है, तो पतन भी शीघ्र ही होगा।

(केरी और फर्डीनेंडके साथ केशवका प्रस्थान)

संभाजी—केरी साहब, तुमने जंजिरागढ़की हालत देखी ?

केरी—हाँ राजा साहब !

संभाजी—यही अवस्था तुम्हारे बंबईके उपनिवेशकी होगी, अगर मेरे दुश्मनोंको जहाजोंके बन्दरगाहमें ठहरने दिया तो ! और एलीफेण्टामें मराठोंका किला बनेगा।

केरी—राजा साहब—

संभाजी—मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। जाओ—और पुर्तुगीज़ सरदार साहब, तुमने मेरा मना किया नहीं माना। तुम्हारे अंकीद्वीपपर दखल करनेके लिए मैंने जहाज भेजे हैं। देखता हूँ, तुम्हारा गोआका

व्यापार कैसे चलता है ! अब भी होशमें आ जाओ—जाओ ।

(कोर्निश करके केरी और फर्डीनेंडका प्रस्थान)

संभाजी—इन फिरंगियोंसे मैं कुछ डरता हूँ दुर्गादास,—काबलेस खाँ ।—

नेपथ्यमें—हुजूर ?—

संभाजी—शराब और नर्तकियाँ—

नेपथ्यमें—जो हुक्म महाराज !

संभाजी—ये फिरंगी बन्दूकका निशाना खूब लगाते हैं ।—और इनकी फौज सरदारके मरनेपर कभी भाग खड़ी नहीं होती । सबकी एक ही चाल, एक ही निशाना, एक ही ओर मुँह रहता है ।

(शराबकी बोतल लिये काबलेसखाँका प्रवेश)

संभाजी—(बोतलसे प्यालेमें शराब ढालकर) लो दुर्गादास !

दुर्गा०—मुझे तो माफ कीजिए महाराज !

संभाजी—यह क्या कहते हो ! शराब पीनेसे इन्कार ? शाहज़ादा साहब—

अकबर—शराब पीना तो कुछ बुरा नहीं है ।—

संभाजी—बेशक, तुम बादशाही तबीयतके आदमी हो । मैं तुमको जरूर बादशाह बनाऊँगा ।

दुर्गा०—तो मैं अब जाता हूँ । जरा विश्राम करूँगा ।

संभाजी—अच्छा जाओ !—

दुर्गा०—(उठते उठते,मनमें) इतनी ओछी तबियतका आदमी है !

संभाजी—देखा अकबर, दुर्गादास कैसी नजरसे मेरी तरफ देखता चला गया ! ढोंग दिखाता है ढोंग ।

अकबर—अच्छा तुम लोग गाओ ।

संभाजी—हाँ, गाओ-नाचो—किस ज़िन्दगीके लिए लड़ाई लड़ें शाहज़ादा साहब, आरामसे जिन्दगीके मजे उड़ाओ—गाओ। एक शाहज़ादेके आनेकी खुशीका गीत गाओ। ये भारतसम्राट् औरंगजेबके लड़के अकबर हैं।

(नाचनेवाली नाचती और गाती हैं।)

गीत

मित्र, दयाकर जो तुम आये हो मन-भाये कुटी हमारी।
जान न पड़े तुम्हें क्या देकर करूँ प्रसन्न, अहो गुणधारी ! ॥
काहेसे मैं करूँ विभूषित तुमको रत्नोंके अधिकारी।
केवल मित्रपनेके नाते अपना लो बस जान अनारी ॥
आशातीत अतिथि, जो तुमको आज कुटीमें अपनी पाया।
राह धूलमें अँधियारीमें, हाथ एक मणि अपने आया ॥
पड़ा रहूँ दिन-रात तुम्हारे चरणोंमें ही शरण तुम्हारी।
तुम मेरे प्रियबन्धु तुम्हारे ऊपर तन मन धन सब वारी ॥

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—राणा जयसिंहका अंतःपुर

समय—सायंकाल

(जयसिंह और उनकी धाय, दोनों आमने-सामने खड़े हैं।)

जय०—क्या ! कमला मुझसे कहे बिना चली गई ?

धाय—गई तो गई ! हुआ क्या ? आफत टल गई !

जय०—बड़ी रानी कहाँ है ?

धाय—वह घरकी लक्ष्मी घरमें है।

जय०—उसे बुलाओ तो। जरूर उससे कुछ झगड़ा हुआ है।

धाय—नहीं भैया, नहीं, वह तो कुछ बोलती ही नहीं। मिट्टीकी पुतली है। छोटी रानी ही बीच बीचमें उसको बकती झकती है—धमकाती है—बापरे बाप! जैसे ताड़का राक्षसी बन जाती है! उस समय छोटी रानीका मुँह मानो आतिशबाजीका अनार बन जाता है और जब मान करती है तब भारी तौला!—भैया, मैंने तो ऐसी लुगाई नहीं देखी!

जय०—चुप! मुँह सँभालकर बात कर!

धाय—अरे बापरे! तुम तो कुंभकर्ण बन गये! मुझे खाने आये हो? क्यों! डर काहेका है? तुमपर तो छोटी रानीने जादू कर दिया है! तुम तो राज-पाट सब छोड़कर उसीके नामकी माला जप रहे हो। मगर मैं तो इस घरका अन्न खाकर पली हूँ—बुड्ढी हुई हूँ—मुझसे यह अन्याय न देखा जायगा।

जय०—देख, मैंने तेरा दूध पिया है, इसीसे तेरी सब बातें सुन लेता हूँ। जा, बड़ी रानीको बुला दे।

धाय—मैं क्यों बुला दूँ! तुम आप क्यों नहीं उनके पास जाते? वह कुछ तुम्हारी मोल ली हुई दासी नहीं है। वह भी तो राजाकी लड़की है।

जय०—तू नहीं जायगी?

धाय—ईः! इनकी लाल लाल आँखें तो देखो, जैसे दुर्वासा मुनि हों! क्या मारोगे? मारो तो अचरज ही क्या है! देखको मुसलमानोंके हाथ सौंपके घरमें औरतोंको डाँटते-डपटते हो—क्रोध दिखाते हो—शर्म भी नहीं आती!

जय०—सभी निन्दा करते हैं मानता हूँ, किन्तु दाई मा, तू भी—मेरे प्राणोंमें क्या हो रहा है, सो क्या तू जानती है?

धाय—जानती क्यों नहीं हूँ। उसने जादू कर दिया है जादू!—रानी बनकर गर्दनपर सवार हो गई है! अच्छा जाती हूँ। बड़ी रानीको बुला देती हूँ। मगर यह कहे रखती हूँ कि उसको कुछ कहना-सुनना नहीं! सती लक्ष्मीका अपमान मुझसे देखा न जायगा। (प्रस्थान)

जय०—जादू ही कर दिया है। मुझे तन्मय बना लिया है। और कुछ भी अच्छा नहीं लगता। कमला इस नगरको छोड़कर चली गई है—संसार सूना देख पड़ता है। आँखोंके आगे अन्धकार छाया हुआ है।

(धीरे धीरे सरस्वतीका प्रवेश)

सरस्वती—मुझे बुलाया है?

जय०—हाँ। छोटी रानी कहाँ है, जानती हो?

सर०—नहीं।

जय०—तुमसे (सिर नीचा करके) कुछ झगड़ा तो नहीं हुआ?

सर०—नहीं।

जय०—(कुछ देरतक चुप रहकर) क्या तुम सच कह रही हो सरस्वती?—मुझे विश्वास नहीं होता।

सर०—विश्वास करना न करना तुम्हारे हाथ है। तुमने पूछा, इससे कह दिया।

जय०—कमलाके यों चले जानेका कुछ कारण जानती हो?

सर०—नहीं, ठीक कारण नहीं जानती।

जय०—कुछ अनुमान किया है?

सर०—हाँ, किया है।

जय०—क्या अनुमान किया है ?

सर०—कहूँगी नहीं। मुझसे कहा न जायगा।

जय०—कहा न जायगा ? न कहोगी ?

सर०—नहीं।

जय०—सरस्वती, यही तुम्हारी पतिभक्ति है !—अच्छा खैर, मेरी बात सुनो। कमलाके लिए देश-त्याग करना होगा, तो वह भी मैं करूँगा।—यह शायद तुम जानती हो ?

सर०—अच्छी तरह जानती हूँ। देशको तो मुसलमानोंके हाथ बेच ही आये हो। उसे त्याग करोगे, तो आश्चर्य ही क्या है।

जय०—देशको मैं बेच नहीं आया। मैंने सन्धि की है !

सर०—इसको सन्धि कहते हैं राणा ? मुसलमान पाँच सौ वर्षसे देश, जाति और धर्मको पीड़ा पहुँचा रहे हैं—अत्याचार कर रहे हैं। उन्हीं मुसलमानोंको राठौर-वीर दुर्गादास और तुम्हारे भाई भीमसिंहने हराया था। तुमने उन्हीं हारे हुए मुगलोंसे यों सन्धि कर ली !—तुमने 'राणा' पदकी अप्रतिष्ठा की।

जय०—यह सन्धि मैंने किसके लिए की है ?—अपने लिए या जातिके लिए ?

सर०—छोटी रानीके लिए !—तुम्हें और कुछ पूछना है ?

जय०—नहीं।

सर०—अच्छी बात है—तो मैं जाती हूँ।

जय०—जाओ—मैं भी जाता हूँ।

सर०—जैसा जी चाहे !—सुनो नाथ, एक बात कहे जाती हूँ—चाहे जहाँ जाओ, मगर शान्ति नहीं मिलेगी। जिस प्रचण्ड प्रवृत्तिके

कारण आज तुम मुझे छोड़कर, पुत्र छोड़कर, राज्य छोड़कर चले जा रहे हो, वह प्रेम नहीं है—वह वासना है। प्रेमकी गति नदीकी तरह स्थिर, स्वच्छ और धीमी होती है, झरनेकी तरह उच्छ्वाससे भरी फेनीली और तेज नहीं होती। सच्चा प्रेम बिजलीके चमक ऐसा तीव्र नहीं होता—वह चाँदनीकी तरह शान्त और मनोहर होता है।—मेरी इस बातको याद रखना अक्षर अक्षर मिलाकर देख लेना।

(प्रस्थान)

जय०—मैं जानता हूँ सरस्वती, यह प्रेम नहीं है, वासना है। यह लालसा धीरे धीरे मुझे राहुकी तरह ग्रसे लेती है—व्याधिके विषकी तरह सारे शरीरमें व्यापती जाती है। यह वासनाकी लालसा मुझे सर्वनाशकी तरफ ढकेले लिये जाती है! सब समझता हूँ। किन्तु उपाय नहीं—कोई उपाय नहीं। (उद्भ्रान्त भावसे प्रस्थान)

छठा दृश्य

स्थान—पुण्यमाली गढ़के भीतर दुर्गादासके सोनेका कमरा

समय—रातके दस बजे

[पलंगपर बैठे दुर्गादास एक पत्र पढ़ रहे हैं।]

"इस प्रकार आपके सरल उदार भाई समरदासकी मृत्यु हुई। इधर हमारी महारानी चितारोहण कर स्वर्गीय स्वामीके पास पहुँच गईं, उधर स्त्री-भक्त कायर राणा जयसिंह मुगलोंसे एक अपमानजनक संधि करके, राज्य छोड़कर, दूसरी रानीको लेकर जयसमुद्रके किनारे रहनेके लिए चले गये हैं। उनके आचरणसे, महारानीके स्वर्गवाससे और वीर समरदासकी मृत्युसे राजस्थानके राजपूत सब तितर-बितर हो गये हैं।—राठौर सेनापति, आप देशको लौट आइए। हमारे अपराधकी क्षमा कीजिए। हम सबकी प्रार्थना मान लीजिए।"

दुर्गा०—हूँ ! पत्रमें एक सौसे अधिक सामन्तोंके हस्ताक्षर हैं।

(पत्रको लपेटकर तकियेके नीचे दबाकर दुर्गादास सिर झुकाये उसी कमरेमें टहलने लगते हैं। संभाजीका प्रवेश)

संभाजी—(शराबके नशेसे भराई हुई आवाज़में) सुना दुर्गादास !

दुर्गा०—क्या महाराज !

संभाजी—औरंगज़ेबको सारे पहाड़ी मुल्कसे मार भगाया।—बेटा संभाजीसे युद्ध करने आया था ! जानता नहीं !

दुर्गा०—मगर, बीजापुर और गोलकुंडा तो शत्रुओंके हाथमें चले गये ?

संभाजी—इससे मेरी कोई हानि नहीं हुई। मैं इधर बीजापुरके पश्चिम प्रान्तपर दखल किये बैठा हूँ। इधर आगे बढ़कर आवेंगे तो संभाजी है, पीछे लौटेंगे तो संभाजीकी सेना है। नाकमें दम कर दूँगा औरंगज़ेब बेटा नहीं जानता कि यह संभाजी है—और कोई नहीं।

दुर्गा०—किन्तु इस तरहके उद्देश्य-हीन युद्धसे फल क्या ?—महाराज, मुझे अनुमति दीजिए, मैं राजपूतोंकी सेना ले आऊँ। मराठे और राजपूत मिलकर औरंगज़ेबके विरुद्ध खड़े हों।

संभाजी—राजपूत ! राजपूत युद्ध करना जानते हैं ? उनकी सहायताका प्रयोजन नहीं हैं दुर्गादास, एक दिन मराठे ही राजपूतों और मुगलोंके दाँत खट्टे करेंगे।

दुर्गा०—महाराज, राजपूतोंके दाँत खट्टे करनेसे मराठोंका गौरव नहीं बढ़ेगा। राजपूत भी हिन्दू हैं और मराठे भी हिन्दू हैं।

संभाजी—हाँ, यह बात तो है।—दुर्गादास तुम्हारा बिछौना तो खूब मुलायम है न ?

दुर्गा०—राजपूतके लिए यह बिछौना खूब मुलायम है। हम लोगोंके लिए अक्सर घोड़ेकी पीठ ही बिछौनेका काम देती है।

संभाजी—यहींपर तो हमारा तुम्हारा मत नहीं मिलता। युद्ध भी चाहिए, और उसके साथ साथ आराम भी चाहिए।—दुर्गादास, जीवनमें और सब कठिनाइयाँ झेली जा सकती हैं, मगर बिछौना नर्म ही होना चाहिए। काबलेखाँ—

नेपथ्यमें—हुजूर !

संभाजी—सब तैयार है ?

नेपथ्यमें—हाँ हुजूर !

संभाजी—तो अब तुम आराम करो दुर्गादास, मैं जाता हूँ।

(प्रस्थान)

दुर्गा०—(टहलते टहलते) मराठोंकी जाति लड़नेवाली है !—इनका घोड़ा चलाना, युद्ध-कौशल और सहनशीलता अद्भुत है ! —इसके साथ अगर राजपूत जातिकी एकाग्रता, स्वार्थत्याग और दृढ़ताको भी मिला सकता, तो क्या न हो सकता था ! पर नहीं, वह न होगा। भारतका भाग्य अच्छा नहीं है। हिन्दू जाति बिखर गई है; उसका फिर एक होना बहुत कठिन है।

(चुपचाप टहलने लगते हैं। सहसा दूरपर आर्त्तनाद सुन पड़ता है।)

दुर्गा०—ओः ! कैसी तीव्र आर्त्त-ध्वनि है ! कैसी करुणध्वनि है ! —जैसे गूँज रही है ! यह तो पास, और भी पास, चली आती है ! —यह क्या ! यह तो मेरे दरवाजेपर ही पहुँच गई ! यह तो किसी स्त्रीकी चिल्लाहट है ! सुनकर हृदय जैसे फट जाता है !—

स्त्री—बचाओ ! बचाओ !

(एक स्त्री, जिसके बाल बिखरे हुए हैं और कपड़े अस्त-व्यस्त हो रहे हैं, दौड़ती हुई आकर दुर्गादासके कमरेमें प्रवेश करती है।)

दुर्गा०—कुछ डर नहीं है बहिन, तुम डरो नहीं। तुम कौन हो बहिन ?

(नंगी तलवार लिये संभाजी और उसके पीछे कावलेसखाँका प्रवेश)

संभाजी—हरामजादी !—शैतानकी बच्ची !—तूने उसे दर्वाज़ा खोल कर भगा दिया ? तूने जान बूझकर ऐसा किया ?

स्त्री—वह भले घरकी बहू-बेटी थी ।

संभाजी—वह भले घरकी बहू-बेटी थी तो तेरा क्या ?

(स्त्री भयके मारे काँपती हुई मूर्छित होकर गिर पड़ती हैं, संभाजी तलवार लिये उसकी तरफ झपटते हैं, दुर्गादास सहसा उनके सामने आ जाते हैं ।)

दुर्गा०—संभाजी !—महाराज ! यह क्या ! औरतको मारनेके लिए झपटते हो !—वीर होकर !

संभाजी—चुप रहो—हट जाओ—

दुर्गा०—कभी नहीं । दुर्गादासने आजतक कभी अपने आगे अबलापर अत्याचार होते नहीं देखा । तलवारको म्यानमें कीजिए महाराज !

संभाजी—जानते हो, यह कौन है ?

दुर्गा०—यह चाहे जो हो, मेरी बहिन है ।

संभाजी—हट जाओ दुर्गादास !

दुर्गा०—होशमें आइए महाराज, आपने शराब पी है । नहीं तो आपके द्वारा एक अबलापर अत्याचार होना संभव नहीं ।

संभाजी—मैं फिर कहता हूँ कि हट जाओ ।

दुर्गा०—कभी नहीं ।

संभाजी—तो फिर तलवार हाथमें लो । मैं निहत्थे शत्रुको मारना उचित नहीं समझता । तलवार लो ।

दुर्गा०—इतना ज्ञान बना हुआ है ! तो फिर स्त्रीपर ऐसा अत्याचार करनेके लिए आप क्यों उतारू हैं ?—सुनिए महाराज—

संभाजी—तलवार लो, (पैर पटककर) लो !—

(संभाजीका गला पकड़कर दुर्गादास पछाड़ देते हैं, तलवार छीनकर दूर फेंक देते हैं और पगड़ी खोलकर संभाजीके दोनों हाथ बाँध देते हैं। काबलेसखाँ मौका पाकर भाग जाता है।)

दुर्गा०—महाराज, आपका अतिथि हूँ। क्षमा कीजिएगा, इस बेअदबीको !

(दुर्गादास अपनी तलवार उठाकर उस स्त्रीके पास जाते हैं और उसे मुर्दा पाते हैं।)

दुर्गा०—यह क्या !—बालिका मर गई ! डरके मारे ही मर गई !—महाराज, इस नन्हींसी जानके लिए तलवार लेकर दौड़े थे !—तुम महात्मा शिवाजीके पुत्र हो !—धिक्कार है ! (प्रस्थान)

संभाजी—कौन है ?—पकड़ो—पकड़ो—

(बाहर हथियारोंकी झनकार सुन पड़ती है।)

संभाजी—छोड़ना मत—पकड़ लो—

[खूनसें तर दुर्गादास फिर प्रवेश करते हैं। साथमें काबलेसखाँ और सिपाही भी हैं। काबलेसखाँ संभाजीके हाथ खोल देता है।]

दुर्गा०—तुम लोग खड़े रहो। मैं भागूँगा नहीं। पचास जनोंके आगे एक आदमी अपनी रक्षा नहीं कर सकता। और अपने प्राण बचानेके लिए मैं अपने जाति-भाइयोंका खून बहाना भी नहीं चाहता। मैं एक स्त्रीके धर्मकी रक्षा कर सका, मेरी इस मृत्युका यही यथेष्ट पुरस्कार है। मुझे खेद है कि मैं उसकी जान न बचा सका। अच्छी तरह जकड़ लो—बाँध लो। जो चाहे दण्ड दो।

(दुर्गादास तलवार फेंक देते हैं और दोनों हाथ बढ़ा देते हैं। संभाजीके इशारेसे काबलेसखाँ डरते डरते दोनों हाथ बाँधता है।)

संभाजी—दुर्गादास, तुमको बड़ा घमंड है।—अब बताओ, तुम्हें आगमें जलाऊँ, या जीता ही गाड़ दूँ? क्या सजा दूँ? किस तरह मरना चाहते हो?

काबलेसखाँ—सरकार, अपने हाथसे मेहमानकी जान लेना मुनासिब नहीं। मेरी राय है, इसे इसके बड़े दोस्त औरंगज़ेबके पास भेज दीजिए।—नतीजा एक ही होगा। फायदा यह होगा कि महाराजको अपने हाथसे बुरा काम न करना पड़ेगा।

संभाजी—हाँ, यही ठीक है। काबलेसखाँ, इसको औरंगज़ेबकी सभामें पहुँचा आओ। वहाँ भेजना और मौतके मुँहमें पहुँचाना एक ही बात है। (ज़ोरसे हँसना)

काबलेसखाँ—(स्वगत) इस तरह काबलेसखाकी मुट्ठी भी गर्म होगी—बहुत इनाम पाऊँगा।

दुर्गा०—अच्छी बात है!—मैं मरने जाता हूँ। लेकिन याद रक्खो संभाजी, एक दिन तुम्हारी भी यही दशा होगी—इसी काबलेसखाँके हाथसे। जो अब भी अपना भला चाहो तो शराब पीना छोड़ो, स्त्रियोंकी इज्जत करो और काबलेसखाँका विश्वास मत करो।

(पर्दा बदलता है।)

सातवाँ दृश्य

स्थान—अहमदनगरके महलका अन्तःपुर

समय—रात्रि

(बेगम गुलनार अकेली टहल रही है ।)

गुलनार—(आप-ही-आप) हम लोग किसके लिए दक्खिन आये हैं? लोग जानते हैं कि औरंगज़ेब अकबरको पकड़नेके इरादेसे आये हैं—बीजापुर और गोलकुंडा फतेह करने आये हैं—मराठोंको काबूमें करने आये हैं।—ऐसा समझनेवाले बेवकूफ हैं। ये सब छोटे छोटे पुर्ज़े चल रहे हैं, मगर इनको चलानेवाला बड़ा चक्कर मैं ही यहाँ बैठे घुमा रही हूँ। अगर मेरी उँगलीका इशारा उधर न होता, तो सैकड़ों अकबर, बीजापुर और संभाजी दिल्लीके बादशाहको दक्खिकी तरफ घसीटकर न ला सकते।—कैसी भारी ताकतको कैसे खुले हाथों फिज़ूल खर्च कर रही हूँ!—बाँदी!—शराब ला। दुर्गादास! दुर्गादास!—तुम अगर जानते—जान सकते—मैं तुम्हें पानेके लिए कितनी मेहनत कर रही हूँ! अगर तुम जानते कि मैं तुम्हारे लिए बादशाहको दिल्लीसे मारवाड़, और मारवाड़से दक्खिन तक घसीट लाई हूँ!—अगर इन बातोंकी खबर होती, तो बेशक तुम मुझपर निसार हो जाते!—बाँदी, शराब लाओ।

(लौंडी शराब लाकर देती है। गुलनार शराब पीकर प्याला दूर फेंक देती है।)

गुल०—ओः कैसी प्यास है!—दुर्गादास! मैं शराब क्यों पीने लगी हूँ, जानते हो?—दुर्गादास! मैं इतनी कमज़ोर और लागर हो गई हूँ कि शायद आज तुम तुझे देखो तो पहचान न सको!

[औरंगज़ेबका प्रवेश]

औरंग०—गुलनार,

गुलनार०—जहाँपनाह, बन्दगी !

औरंग—गुलनार, बड़ी अच्छी खबर सुनाने आया हूँ।—दुर्गादास पकड़ लिया गया।

गुलनार—(उत्सुक भावसे) सच ! या दिल्लगी करते हो ?

औरंग०—दिल्लगी नहीं प्यारी, सच बात है। काबलेसखाँ उसे पकड़ लाया है। काबलेसखाँको मैंने खुश होकर इनामके तौरपर तीस हज़ार अशर्फियाँ दी हैं और उससे कह दिया है कि अगर संभाजीको भी पकड़ा सकेगा, तो इससे दस गुना इनाम पावेगा।

गुलनार—सच बात है ! इतने दिनके बाद मैंने जाना कि, तुम मुझे प्यार करते हो। हमारे दक्खिन आनेका मतलब आज पूरा हुआ।

औरंग०—लेकिन गुलनार, तुमने क्या शराब पी है ?

गुलनार—हाँ पी है। अब दुर्गादासकी गिरफ्तारीकी खुशीका एक प्याला और पियूँगी। बाँदी—

औरंग०—यह क्या गुलनार ! मेरे महलके भीतर शराब !

गुलनार—(गर्वके भावसे उठकर खड़े होकर) तो इससे हुआ क्या बादशाह सलामत ?

औरंग०—जानती हो मैं शराब पीनेके ख़िलाफ हूँ !

गुलनार—तुम हो सकते हो, मैं नहीं हूँ।

औरंग०—तुम नहीं हो ? तुमने दीने इसलाम नहीं कुबूल किया ? तुम मुसलमान नहीं हुईं ?

गुलनार—मैंने अपनी मर्ज़ीसे दीने इसलाम कुबूल किया था, इस वास्ते

जी चाहे तो मैं उसे छोड़ भी सकती हूँ !—दीन ? मैं दीनके इन झगड़ोंके लिए दुनियामें नहीं पैदा हुई ।

औरंग०—तुमको होश नहीं है गुलनार, कि तुम क्या बक रही हो ।

गुलनार—मुझे सब होश है—सुनो ।—दुर्गादास कहाँ है ?

औरंग०—दिलेरखाँकी देख-रेखमें । मैं सोच रहा हूँ कि उस पाजीको क्या सजा दी जाय । पहले—

गुलनार—उसे कोई सजा न देना । छोड़ देना ।

औरंग०—यह क्या ?—यह भी कहीं हो सकता है ?

गुलनार—हो सकता है, अच्छी तरह हो सकता है और इसे तुम खुद ही समझ रहे हो । उसे सिर्फ छोड़ ही न दोगे, बल्कि मेरे साथ कैदखानेके भीतर चलोगे !—मैं कहूँगी, दुर्गादासको छोड़ दो—और तुम अपने हाथसे उसे छोड़ दोगे ।

औरंगज़ेब—तुमको होश नहीं है गुलनार, तुमने बहुत शराब पी ली है ।—जब तुम होशमें आओगी तब बातचीत होगी । (प्रस्थान)

गुलनार—अच्छी बात है ! मैं होशमें आती हूँ । दुर्गादास ! तुमको मैं अपने हाथसे कैदसे छुड़ाऊँगी । मैं इसे अपने लिए बड़े ही फक्रकी बात समझती हूँ । मैं अपने हाथसे तुम्हारी हथकड़ी बेड़ी खोलकर—तुमको निहाल कर दूँगी । दुर्गादास ! मैं तुमको दिल्लीके तख्तपर बिठाऊँगी और मैं तुम्हारी बेगम बनूँगी । तुम्हारे लिए वह कैसी इज्जत होगी ! —और औरंगज़ेब ! तुम तो मेरी इस मुट्ठीमें हो ! तुमको तख्तसे उतारते कितनी देर लगती है !—दुर्गादास ! मैंने तुम्हारी सब गलतियोंको—सब कुसूरोंको—माफ कर दिया । इतने दिनोंतक तुम मुझे अपने पीछे पीछे दौड़ाते रहे—मगर दुर्गादास ! आज तुम्हारे सब कुसूर मैंने माफ कर दिये ! ओः आज कैसी खुशीका दिन है ! (प्रस्थान)

आठवाँ दृश्य

स्थान—छावनीका कैदखाना
समय—आधी रातसे कुछ पहले
[हथकड़ी-बेड़ी पहने दुर्गादास बैठे हैं।]

दुर्गा०—अन्तको यह दशा भी हुई ! जो लांछना आजतक विजातीय विधर्मी शत्रुओंके हाथों नहीं हुई थी, वह आज अपनी जातिके स्वधर्मी हिन्दूके हाथसे हुई !—संभाजी, तुम समझते हो कि मराठे लोग एक दिन राजपूतों और मुसलमानोंको एक साथ परास्त करेंगे। यह होता तो भी कुछ दुःख न था। किन्तु यह न होगा। देखोगे कि एक दिन मराठे, राजपूत और मुसलमान तीनों एक साथ किसी औरके पैरोंपर लोटेंगे। विश्वासघातका दण्ड अवश्य अवश्य मिलता है।—कौन ?—कैदखानेका दरवाज़ा किसने खोला ?

[सिंगार किये हुए गुलनारका प्रवेश]

दुर्गा०—यह कैसी सुन्दर सजावट है ? रूपकी यह कैसी ज्योति है !—आप कौन हैं ?

गुलनार०—मैं हूँ बेगम गुलनार !

दुर्गा०—बेगम गुलनार ?

गुलनार—पहचान नहीं पाते दुर्गादास ? एक दफा हम लोगोंकी मुलाकात हो चुकी है। उस दिन मैं कैदीकी हालतमें क्षी। आज तुम मेरे कैदी हो।

दुर्गा०—आप मुझे दण्ड देने आई हैं ?

गुल०—नहीं, मैं तुमको कैदसे रिहाई देने आई हूँ।

दुर्गा०—एहसानका बदला चुकानेके लिए ?

गुल०—नहीं।

दुर्गा०—तो फिर ?—बादशाहके हुक्मसे ?

गुल०—गुलनार बादशाह औरंगज़ेबके हुक्मकी पर्वा नहीं रखती, आजतक वे ही मेरा हुक्म मानते आये हैं।

दुर्गा०—तो ?

गुल०—मैं अपनी खुशीसे तुमको रिहाई देने आई हूँ।—क्यों कि मैं तुमको चाहती हूँ—

दुर्गा०—यह क्या आप दिल्लगी करती हैं ?

गुल०—तुम्हें बड़ा ताज्जुब मालूम होता है ?—मैं हिन्दोस्तानके बादशाहकी बेगम होकर एक राजपूत सरदारको चाहती हूँ ! बेशक, ताज्जुब होनेकी बात ही है। लेकिन तुम मेरी मौजको नहीं जानते—मैं मामूली औरतोंकी तरह कोई काम नहीं करती। निरालापन ही मुझे पसंद है। जो मामूली है, जिसे सब लोग कर सकते हैं, वह बेगम गुलनार नहीं करती। गुलनार जब घोड़ा दौड़ाती है, तब उसकी रास छोड़ देती है। मामूली ऐश, आराम, या खुशी वह नहीं चाहती। बेगम गुलनार आज़ाद है, हर काममें आज़ादी ही उसे पसन्द है।

दुर्गा०—लेकिन—बेगम—

गुल०—सुनो, मेरी बात सुनो। मेरा हर काम अनोखा, अचंभेका होता है। यह इतनी बड़ी मुगलोंकी सल्तनत क्या एक बड़ा भारी अचंभा नहीं है ?—यह अचंभा मेरा ही खेल है ! यह सल्तनत मज़मून है, दस्तख़त बादशाहके हैं और इबारत मेरी गढ़ी हुई है ! मेरी उँगलीके इशारेपर सल्तनतमें जंग मच जाता है और आँखके इशारेसे अमन-चैन फैल जाता है ! मेरे मुस्कराकर देखनेसे कितने ही राजा बन

जाते और मेरी भौं टेढ़ी होते ही राजोंके राज-पाट मिट्टीमें मिल जाते हैं। इतने दिनोंसे यही होता आ रहा है। जिस दिन तुमने मुझे गिरफ़्तार किया था, उस दिन मैंने उसे तकदीरका ही लिखा मान लिया था—वैसे कभी किसी इन्सानके आगे सिर नहीं झुकाया। उसी दिन मैंने तुमको चाहकी नज़रसे देखा था, लेकिन मैंने तुमको अपनी वह इच्छा जताई नहीं थी। मैं तुम्हारे काबूमें, कैदीकी हालतमें थी। उस वक्त, मजबूर होनेकी हालतमें, फकीरकी तरह अपनानेकी भीख माँगना मेरी आदतके खिलाफ़ था। आज तुम मेरे कैदी हो। चाह जतानेका यही ठीक मौका है—दुर्गादास, मैं तुमको चाहती हूँ।

दुर्गा०—बेग़म साहब, आपको शायद यह ख़याल नहीं कि आप क्या बक रही हैं।

गुल०—बादशाहसे डरते हो? आओ, देखोगे, बादशाह मेरे गुलाम हैं; मैं उनकी लौंडी नहीं हूँ। तुमको मैं दिल्लीके तख़्तपर बिठलाऊँगी!—आओ!

दुर्गा०—बेगम साहब, माफ कीजिए।—बुरी राहपर चलकर मैं सारी दुनियाका भी बादशाह नहीं होना चाहता।

गुलनार—सल्तनत नहीं चाहते?

दुर्गा०—नहीं बेगम साहब,—आप लौट जाइए।

गुलनार—क्या तुम मुझे भी नहीं चाहते?

दुर्गा०—नहीं। हम राजपूत लोग पराई स्त्रीको माता समझते हैं। अपनी इज्जत आप भले ही न रक्खें, पर मैं रक्खूँगा!

गुलनार—(दमभर सन्नाटेमें खड़े रहनेके बाद) क्या दुर्गादास, बादशाह औरंगज़ेब जिसके इशारेपर चलते हैं, उसी गुलनारके प्रेमसे तुम इनकार कर रहे हो?

दुर्गा०—बेगम साहब, जगतमें सभी औरंगज़ेब नहीं हैं। पृथ्वी-पर औरंगज़ेब ऐसे आदमी भी हैं और दुर्गादास ऐसे भी।

गुलनार—यह क्या मुमकिन है?—जानते हो दुर्गादास, तुम्हारे लिए इसका नतीजा क्या होगा?

दुर्गा०—जानता हूँ—मौत।

गुलनार—नहीं दुर्गादास, तुम हँसी कर रहे हो।

दुर्गा०—जीवनमें इससे बढ़कर गम्भीर होकर मैंने कभी कोई बात नहीं की।

गुलनार०—क्या! मुझसे नफरत करते हो?—मेरा कहना तुमको मंजूर नहीं? दुर्गादास, मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि गुलनार किसीसे घुटने टेककर भीखकी तरह प्यार नहीं माँगती—वह दुआकी तरह अपना प्यार बाँटती है।—पसन्द कर लो—बेगम गुलनारका प्यार या मौत?

दुर्गा०—पसन्द कर लिया, मैं मौत चाहता हूँ।

गुलनार—मौत? अच्छा यही सही—मैं अपने हाथसे तुम्हारी जान लूँगी।—गुलनारसे एक ही चीज़ पाओगे—मोहब्बत या मौत। अगर मोहब्बत नहीं चाहते, तो मौतके लिए तैयार हो जाओ—कामबख्श!

[गुलनारके पुत्र कामबख्शका प्रवेश]

गुलनार—कामबख्श,—मारो! इसे मारो! इसी दम मार डालो—देख क्या रहे हो!—मारो!

कामबख्श—क्यों अम्मीजान?—बादशाहके हुक्मके—

गुलनार—बादशाहका हुक्म? मेरे हुक्मपर बादशाहका हुक्म? इसी दम मारो।—क्या! मेरा कहना न मानोगे? (चिल्लाकर) मारो—मारो—मारो!

कामबख्श—(तलवार खींचते खींचते) अच्छी बात है, तो मरनेके लिए तैयार हो जा क़ैदी।

दुर्गा०—मैं तैयार हूँ।

(कामबख्श दुर्गादासको मारनेके लिए तलवार उठाता है। इसी समय दिलेरखाँका प्रवेश)

दिलेर०—खबरदार कामबख्श !—नहीं तो—

(कमबख्शकी तरफ पिस्तौल तानना)

गुलनार—तुम कौन हो ?

दिलेखाँ—मैं हूँ मुगल-फौज़का सरदार दिलेरखाँ।

गुलनार—क्या ! तुम्हारी इतनी मज़ाल कि तुम मेरे हुक्मके खिलाफ़ काम करोगे ?

दिलेर०—दिलेरखाँ किसीको नहीं डरता बेगम साहब, वह अपनी नेकचलनी और नेकनीयतीके भरोसे खुदाके सामने भी सच कहनेमें नहीं हिचक सकता, फिर तुम तो चीज़ ही क्या हो।—गुनहगार ! बेहया !—यह न समझना कि मैंने कुछ सुना नहीं। सब सुना है। (दुर्गादासकी ओर फिरकर) दुर्गादास, बहादुर, मैं जानता था कि तुम ऊँचे दर्जेके आदमी हो, लेकिन मुझे यह ख़याल न था कि तुम इतने ऊँचे दर्जेके आदमी हो। मैं अपने हाथसे तुम्हारी हथकड़ी-बेड़ी खोल देता हूँ। (बन्धन खोलकर) चले आओ बाहर—मैं अपना सबसे अच्छा घोड़ा तुमको देता हूँ। साथमें पाँचसौ सवार देता हूँ। देशको लौट जाओ।—मेरे हुक्मसे कोई मुग़ल-सरदार तुमसे न बोलेगा।—चले जाओ बहादुर ! बन्दगी बेगम साहब !

(दुर्गादासका हाथ पकड़कर दिलेरखाँका प्रस्थान, गुलनार और कामबख्श पत्थरकी मूर्तिकी तरह खड़े रहते हैं।)

[पर्दा गिरता है।]

पाँचवाँ अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—अकबरका डेरा

समय—रात्रि

[सिंहासनपर अकबर बैठे हैं, सामने नाचनेवालियाँ नाचती-गाती हैं।]

नील गगन, चंद्र-किरन, तारन-गन ये।
हेरो नयन हर्ष-मगन, सकल भुवन ये ॥ नील० ॥
निद्रित सब कूजन-रव नीरव भव ये।
मोहन नव, हेरि विभव, धरनी नव ये ॥ नील० ॥
डोलत धन, स्निग्ध पवन, चाँदनि घन ये।
नन्दनवनतुल्य भुवन, मोहत मन ये ॥ नील० ॥

अकबर—क्या बात है ! वाहवा ! सुभानअल्लाह !

[इसी समय हँसते हुए काबलेसखाँका प्रवेश]

अकबर—कौन ? काबलेसखाँ, संभाजी कहाँ हैं ?

काबलेस—अब संभाजी कहाँ ! शाहज़ादा, संभाजी यों (गिरनेका संकेत)—

अकबर—इसके क्या माने ?

काबलेस—गुड्डुप हो गये !

अकबर—कुएँमें गिर पड़े ? शायद ज़्यादा पी ली थी ?

काबलेस—नहीं साहब, संभाजी गिरफ्तार हो गये। अब वह आपके अब्बाजानके तंबूमें हैं। हाथोंमें—(बन्धनकी अवस्थाका भाव दिखाना)

अकबर—यह क्या !—ऐसा होना गैरमुमकिन है !

काबलेस—गैरमुमकिन नहीं शाहज़ादा साहब, एकदम ठीक है। अब आप अपनी राह देखिए।

अकबर—तो क्या यह सच कह रहे हो काबलेसखा ?

काबलेस—(सिर हिलाकर) बिल्कुल सच है शाहज़ादा साहब, झूठ बात शायद ही कभी काबलेसखाँकी ज़बानसे निकलती हो। संभाजी एकदम गिरफ्तार हैं । अब आपने क्या करना ठीक किया है ? आपका मुँह तो स्याह पड़ गया !—(अकबर चुप रहते हैं।)—सुनिए शाहज़ादा साहब, अगर मेरी राय आप पूछें, तो मैं यही कहूँगा कि आप मेरे साथ बादशाहके पास चलें ।

अकबर—(फीकी हँसी हँसकर) बादशाहके पास ? उसकी बनिस्बत मैं शेरके सामने जानेको ज़्यादा पसन्द करता हूँ ।

काबलेस—शाहज़ादा साहब, आप मेरे साथ बादशाहके पास चलिए। कुछ डर नहीं है । वे आपको कुछ न कहेंगे । बल्कि खुश होकर आपकी ख़ातिर करेंगे। मैं जामिन होता हूँ ।

अकबर—बादशाहके पास ?

काबलेस—हाँ शाहज़ादा साहब, बादशाहके पास।—क्या राय है ?

(एकाएक दुर्गादासका प्रवेश)

दुर्गा०—(काबलेसखाँसे) नामकहराम ! पाजी ! विश्वासघाती ! अपने जालमें शाहज़ादाको भी फँसाना चाहता है ?

अकबर—यह क्या ! दुर्गादास कहाँसे आ गये !

काबलेस—हाँ दुर्गा—(काँपता है)

दुर्गा०—काबलेस, तेरी अभिलाषा पूरी नहीं हुई। मैं जीता जागता लौट आया। यदि तूने मुझे शत्रुके हाथमें सौंप दिया था, तो ख़ैर कोई बड़ी बात नहीं। मैं तेरा कोई नहीं हूँ । मगर अन्तको तूने अपने स्वामी संभाजीसे भी दगा किया !—उनको भी पकड़ा दिया !—कृतघ्न ! नरपिशाच !

काबलेस—नहीं—मैंने—नहीं—महाराज—

दुर्गा—तूने नहीं ? काबलेस, महाराज संभाजी तेरी सलाहसे एक गौने आई हुई ब्राह्मण-बालिकाको हरनेके लिए गढ़के बाहर गये थे या नहीं ?—सच बोल, झूठ बोलनेसे छुटकारा न होगा।

काबलेस—(काँपते हुए) जी।

दुर्गा०—और तूने पहले ही यह ख़बर शाहज़ादा आज़मको दे रक्खी थी या नहीं ? उसके बाद आज़मने ५०० मुगल-सिपाही साथ लाकर महाराज संभाजीको कैद कर लिया।—क्यों न ? ठीक है न ?

काबलेस—जी। (भागना चाहता है।)

दुर्गा०—भाग मत (काबलेसखाँकी गर्दन पकड़कर) काबलेसखाँ, खुदाको याद कर ले।

काबलेस—माफ़ करो खुदावन्द—मै आपका कुत्ता हूँ।

(भयसे विह्वल काँपता हुआ काबलेसखाँ दुर्गादासके पैर पकड़ता है।)

दुर्गा०—जा, तुझे न मारूँगा। तेरी हत्या करके अपने हाथोंको अपवित्र और कलंकित न करूँगा। तूने संभाजीका परलोक बिगाड़कर अन्तको यह लोक भी बिगाड़ा। तुझे नरकमें भी जगह नहीं मिलेगी—जा। (लात मारकर काबलेसखाँको निकाल देते हैं।)—शाहज़ादा साहब, एक दिन मैंने संभाजीसे कहा था कि यह शराब और यह ऐयाशी ही तुम्हारा सर्वनाश करेगी और वह सर्वनाश इसी काबलेसखाँके हाथसे होगा।—और ठीक वही हुआ।—शाहज़ादा साहब, इस दृष्टान्तसे शिक्षा प्राप्त कीजिए। पहले भी कई बार कह चुका हूँ और आज फिर कहता हूँ—शराब और नर्तकियोंको छोड़िए।—ये दोनों नशे बहुत भयानक हैं।

अकबर—बहुत ज़्यादा देर हो गई दुर्गादास, बहुत ज़्यादा देर हो गई !

दुर्गा०—कुछ भी देर नहीं हुई शाहज़ादा साहब, अब भी समय है। कोई प्रवृत्ति ऐसी नहीं, जो दबाई न जा सके। उसके लिए आन्तरिक चेष्टा होनी चाहिए। आप अच्छे वंशके लड़के हैं; आपने अच्छी शिक्षा पाई है; आप उच्च हृदयके आदमी हैं। आप चेष्टा करें, तो क्या इन बुरी आदतोंको नहीं छोड़ सकते?

अकबर—(दमभर चुप रहकर) दुर्गादास, तुमने ठीक कहा। मैं इस नशेको छोड़ दूँगा। सिर्फ यही नशा नहीं, इस दुनियाका ही नशा छोड़ दूँगा। सब छोड़ दूँगा।

दुर्गा०—यह क्या शाहज़ादा साहब!

अकबर—हाँ दुर्गादास, सब छोड़ दूँगा। इस ज़िन्दगीसे नफ़रत हो गई है। दूसरोंके गले पड़कर जिन्दगी बिता रहा हूँ, तब भी ऐश-आराममें डूबा हुआ हूँ। यह तबियतकी कमजोरी क्या कम नालायकी है?—इस बातका ऐसा ख़याल आजतक मुझे कभी नहीं हुआ। (सिर झुका लेते हैं।)

दुर्गा०—सुनिए शाहज़ादा साहब, मेरे साथ मारवाड़ चलिए—

अकबर—नहीं दुर्गादास, मैं मारवाड़ न जाऊँगा। अब मैं मक्के शरीफ़की ज़ियारतको जाऊँगा। बहुत दिनोंसे तुम्हारे गले पड़ा हुआ हूँ। मेरी वजहसे तुमको बहुत बहुत तकलीफें उठानी पड़ी हैं। माफ करो, मुझे बचानेके काममें तुमने अपने देश और अपने आदमियोंको छोड़ दिया। मेरे कारण तुम्हारा बहादुर भाई मरा—और तुम भी मौतके मुँहसे लौट आये।

दुर्गा०—यह मेरा धर्म था शाहज़ादा साहब, कर्तव्य था—फर्ज़ था।

अकबर—फर्ज़ था? मैं भी मक्के जाकर इसी तरह फरायज़को पूरा करना सीखूँगा। बहुत गुनाह किये हैं; किसी भी काममें मन नहीं

लगाया, ऐश-आराममें ही इतनी ज़िन्दगी बिताई है। बापका बागी बना लापर्वाही करके औरतकी जान ले ली; जान-बूझकर अपने लिए तुमको मुसीबतमें डाल दुख पहुँचाया। आखिरको संभाजीके मरनेका सबब हुआ। जाता हूँ दुर्गादास, मेरे लिए जहाँ इतना किया है वहाँ इतना और करना। तुम अपने देशको जाओ—मेरी रज़ियाका ख्याल रखना। उसकी हिफाजत करना दुर्गादास,—मैं उसको तुम्हें सौंपे जाता हूँ।—अच्छा जाता हूँ मेहरबान दोस्त!

(अकबर दुर्गादाससे हाथ मिलाते हैं।)

दूसरा दृश्य

स्थान—जयसमुद्र तालाबके किनारेका राजमहल

समय—सायंकाल

(जयसिंह और कमला, दोनों महलके बरामदेमें खड़े बातें कर रहे हैं।)

जय०—कमला, तुम मुझसे विमुख न होना। तुम्हारे लिए मैंने देश छोड़ा है, राज्य छोड़ा है, पुत्र छोड़ा है।

कमला—किसने छोड़नेके लिए कहा था?

जय०—तुमने।

कमला—कभी नहीं। मैंने केवल यह कहा था कि बड़ी रानी और छोटी रानीमेंसे एकको पसंद कर लो। दोनोंके होकर नहीं रह सकते।

जय०—मैंने तुमको लिया। बड़ी रानीको छोड़ दिया।

कमला—किन्तु राज्य छोड़ देनेके लिए मैंने नहीं कहा था। बड़ी रानीके लड़के अमरसिंहको राज्य दे आनेके लिए नहीं कहा था। मेरा पुत्र क्या कोई है ही नहीं?

जय०—ओः ! इसीके लिए तुमसे बड़ी रानीका झगड़ा हुआ था ! तो तुमने इतने दिनोंतक बताया क्यों नहीं कमला ? बड़ी रानीने पुत्रके अमंगलकी आशंकासे उस दिन लड़ाई-झगड़ेका कारण नहीं बतलाया। अब समझमें आया—कमला, राज्य तो अमरसिंहका ही है। अमरसिंह बड़ा लड़का है। शास्त्रके अनुसार बड़ा लड़का ही राज्यका उत्तराधिकारी होता है।

कमला—तो तुम शास्त्रको मुझसे बढ़कर मानते हो ?

जय०—एक दिन मैं तुमको सब शास्त्रोंसे बढ़कर मानता था।

कमला—हाँ !—तो फिर तुम्हारी क्या यह इच्छा है कि तुम्हारे मरनेके बाद मैं खानेके लिए बड़ी रानीके अधीन रहूँ ?

जय०—(सन्नाटेमें आकर, दमभरके बाद) कमला, तुमको इतना आगेका ख़याल है ? मैंने तो इतना कभी नहीं सोचा—तो तुमको पुत्रके लिए नहीं, अपने लिए चिन्ता है ?

कमला—अपने लिए चिन्ता करना क्या इतना बुरा है राणा ? कौन अपने लिए चिन्ता नहीं करता महाराज !

जय०—कहाँ ! मैंने तो कभी अपने लिए चिन्ता नहीं की रानी ! मैं राणा राजसिंहका पुत्र हूँ। मैं चाहता तो क्या नहीं हो सकता था। यश, मान, ऐश्वर्य, प्रभुत्व और विलास छोड़कर—अपनी जातिका धिक्कार स्वीकार कर—मैं तुम्हारे लिए वनवासी हुआ हूँ। आगेकी कौन कहे, मैंने तो तुम्हारे कारण जो था, उसे भी छोड़ दिया है।

कमला—मेरे लिए छोड़ दिया, या मेरे रूपके लिए ? तुमने मुझसे विवाह किया था मेरे रूपके लिए। और मैंने भी तुमसे व्याह किया था तुम्हारे लिए नहीं, तुम्हारे राज्यके लिए।

जय०—मेरे राज्यके लिए ? यह मैं क्या सुन रहा हूँ !—तो क्या मैं इतने दिनोंतक प्रेमका स्वप्न ही देख रहा था ? मैंने सोचा था कि

तुमने मुझे अपना हृदय अर्पण कर दिया है। मैं सोचता था कि तुमने यह रूप वैभव अपनी इच्छासे मुझे सौंप दिया है। मैं तुम्हारे इस दानके मोहमें मुग्ध हो रहा था! कमला, तुमने मेरा बड़े सुखका स्वप्न मिटा दिया!—कमला! कमला! तुम नहीं जानतीं कि तुमने मेरा कैसा सर्वनाश कर डाला!

कमला—मैंने तुम्हारा सर्वनाश किया, या तुमने मेरे रूपके लिए मेरा सर्वनाश किया?

जय०—रूप? संसारमें क्या रूपकी—सौन्दर्यकी—कमी है रानी? जहाँ अँधेरे और चाँदनीके इंद्रजालका खेल होता है—अन्नके हरेभरे खेतोंमें हरियालीकी शोभा लहराती है—अनन्त नील आकाशका पसार है, जहाँ जिधर देखो उधर ही सौन्दर्य, सुगन्ध, संगीतकी भरमार है, जहाँ आकाशके हृदयसे दिनरात सौन्दर्यकी वर्षा हुआ करती है—पृथ्वीके भीतरसे निकले हुए फूलोंसे रूप और सुगन्धका फुहारा छूटा करता है, उस संसारमें मैं तुम्हारे रूपके लिए गया था? कहाँ है वह तुम्हारा रूप कमला? कहाँसे आया था? अब कहाँ चला गया?

कमला—अब तुम्हारा अभिप्राय क्या है?

जय०—अभिप्राय? मालूम नहीं। मोहका नशा उतर गया है। लेकिन बहुत ही अचानक। मुझे समय दो।—रूप! रूप! बाहरी रूप! हृदय-हीन नारीका रूप—

[दरबानका प्रवेश]

दरबान—(प्रणाम करके) महाराणा साहब, मन्त्रीजी मिलना चाहते हैं।

जय०—मन्त्री?—यहाँ?—जाओ, यहीं ले आओ।

(दरबानका प्रस्थान)

जय०—(कमलासे) लेकिन कमला, इतने दिनतक किस तरह

किस उपायसे तुम अपने नीच हृदयको सुन्दर पर्देसे ढके रहीं? रत्ती-भर भी मुझे मालूम नहीं हुआ कि तुम इतनी ओछी तबियतकी हो! जाओ कमला, भीतर जाओ, तुमपर मुझको क्रोध नहीं है। तुमको भी बड़ी आशा थी, पर निराश होना पड़ा—और मुझको भी बड़ी आशा थी, पर निराश होना पड़ा। भीतर जाओ।

कमला—(जाते जाते, स्वगत) शायद जो था वह भी खोया!

(प्रस्थान)

जय०—इसीके लिए मैंने सब छोड़ दिया! साक्षात् लक्ष्मीसी बड़ी रानी सरस्वतीको छोड़ आया!—सरस्वती अब शायद मैं तुमको कुछ कुछ पहचान सका हूँ! उस दिन तुमने सच कहा था कि "यह प्रेम नहीं, मोह है—एक दिन छूट जायगा।" सरस्वती! तुम सदा सच बोलती हो, किन्तु तुम्हारी यह बात सबसे बढ़कर सत्य है।

[मन्त्रीका प्रवेश]

जय० — क्यों मन्त्रीजी राज्यकी क्या खबर है?

मन्त्री०—राणा साहब, मैं नौकरी छोड़ना चाहता हूँ।

जय०—क्यों—क्यों! क्या हुआ मन्त्रीजी?

मन्त्री—क्या बताऊँ, क्या हुआ। राणा साहबके बड़े कुँअरने मेरा बड़ा अपमान किया है। मैं इस पदपर काम करते-करते बूढ़ा हो गया, पर मेरा ऐसा अपमान कभी नहीं हुआ।

जय०—क्या अपमान किया?

मन्त्री—कुँअर अमरसिंहने एक दिन एक मस्त हाथी खोलकर शहरमें छोड़ दिया। उसने कई पुरवासियोंको मार डाला। मैंने उसके लिए कुँअरसे कहा-सुना, तो उन्होंने सिर मुड़ाकर गधेपर चढ़ाकर शहरभरमें मुझे घुमाया।

जय०—यहाँ तक ! अमरको यह ख़याल नहीं कि मैं उसे तुम्हारी देख-रेखमें छोड़ आया हूँ ?

मन्त्री—उनके किसी भी कामसे यह प्रकट नहीं होता कि उनके हृदयमें आपके प्रति श्रद्धा या भक्ति है।

जय०—चलो, कल मैं राजधानीको लौट चलूँगा और इस मामलेका यथोचित विचार करूँगा।—चलो।—(मन्त्रीका प्रस्थान) नारी !—नारी ! तुम इतनी बनावट कर सकती हो ?—हाँ, अब समझ रहा हूँ ! अब समझमें आ रहा है !—

तीसरा दृश्य

स्थान—जोधपुर ! गढ़का शिखर।

समय—चाँदनी रात

[अजितसिंह और रजिया एक चबूतरेपर बैठे हैं।]

रजिया—कैसा सुन्दर चाँद निकल रहा है। देखो अजित, वह देख रहे हो पूरबमें एक काले बादलके ऊपर निकल रहा है। बादलके ऊपरी हिस्सेमें जैसे किसीने चारों तरफ एक सुनहली लकीर खींच दी है। बादलके नीचेका सब हिस्सा खूब गाढ़े काले रंगका है। चाँदका चौथाई हिस्सा बादलके ऊपर दिखाई पड़ रहा है। – कैसा खूबसूरत, कैसा ठंडक पहुँचानेवाला, कैसा चमकीला चाँद है ! — कैसा सुंदर देख पड़ रहा है अजित !

(अचानक आगे बढ़कर अजित रजियाका हाथ पकड़ लेता है। ठीक इसी समय मुकुन्ददासका प्रवेश।)

मुकुन्द०—महाराज—(अजितको रजियाका हाथ पकड़े देखकर लौटते हैं।)

अजित०—क्यों मुकुन्ददास, कोई जरूरी खबर है ?

मुकुन्द०—हाँ महाराज, सेनापति दुर्गादास दक्खिनसे आ गये हैं।

अजित० - कौन ? दुर्गादास आये हैं ? कहाँ हैं ?

मुकुन्द०—बाहर।

अजित०—चलो ! अच्छा, नहीं उन्हें यहीं ले आओ।

मुकुन्द०—जो आज्ञा।　　(प्रस्थान)

अजित०—जाओ रजिया, अपने कमरेमें जाओ।—

(रजिया जाती है।)

अजित०—दुर्गादास लौट आये ? मेरे रक्षक, देशके भरोसा, दुर्गादास लौट आये - तो इससे एक तरहकी प्रसन्नता होनी चाहिए। मगर मेरे मनमें खटकासा क्यों पैदा हुआ यह कैसी चिन्ता है, जो मेरे चिरसंचित स्नेह, भक्ति और कृतज्ञताके भावको मथकर गँदला बना रही है ! नहीं, यह बहुत ही अनुचित है ! नहीं, इस भावको—इस प्रवृत्तिको—मनसे दूर करना चाहिए।

[मुकुन्ददास और शिवसिंह, दोनों सामन्तोंके साथ दुर्गादासका प्रवेश]

दुर्गा०—महाराज, सेवक सेवामें आ गया। कुँअरको (गद्गद स्वरसे) महाराज कहकर प्रणाम करनेकी बहुत दिनोंकी मेरी आशा आज पूरी हुई। महाराज, प्रणाम। (पद-चुम्बन)

अजित०—भक्त बन्धु, मेरे प्रियतम सेनापति, कुशल तो है ?

दुर्गा०—हाँ अभी तक तो कुशल है।—महाराज, तो आपने स्वयं ही सामन्तोंको दर्शन दिये ?

अजित०—हाँ, मैंने आप ही सामन्तोंसे भेंट की।

मुकुन्द०—(दुर्गादाससे) स्वामी, बहुत दिन तक मैं इसपर राजी नहीं हुआ। मैंने कहा—स्वामीकी आज्ञा बिना महाराजके दर्शन नहीं

मिल सकते। पर सामन्तोंने किसी तरह नहीं माना। उन्होंने कहा—हम महाराजके दर्शन करेंगे।—कुछ न मानेंगे।

दुर्गा०—चलो अच्छा ही हुआ।—सब सामन्तोंने महाराजकी अभ्यर्थना की थी?

मुकुन्द०—अभ्यर्थना? बड़े उत्साहसे—बड़ी धूमसे महाराजकी अभ्यर्थना की गई थी। चैत्रकी संक्रान्तिको महाराजने सामन्तोंको दर्शन दिये थे। वहाँपर दुर्जनसाल, उदयसिंह, तेजसिंह, विजयपाल, जगतसिंह, केसरीसिंह और और बहुतसे सामन्त उपस्थित थे। सब महाराजको घेरकर जयध्वनि करने लगे। घर-घर गली गली उत्सवकी धूम मच गई।—स्वामी, उस दिनका वह दृश्य अपूर्व ही था!

दुर्गा०—अच्छी बात है!—इधर युद्धकी क्या खबर है शिवसिंह?

शिव०—औरंगज़ेबने मुहम्मदशाहको जसवन्तसिंहका एक पुत्र कहकर जोधपुरके राजाके नामसे खड़ा किया था। वह मर भी गया। जोधा हरनाथने शुजायतखाँको कच्छ तक भगा दिया। महाराज (अजितसिंह) ने खुद अजमेर जाकर सैफीखाँको परास्त किया।

मुकुन्द०—सब अच्छी खबर है सेनापति, किन्तु वीर समरदासकी शोचनीय मृत्युसे सब जय फीकी जान पड़ती है।

अजित०—सेनापति, जयसिंहके पुत्र अमरसिंहने अपने पिताके विरुद्ध युद्ध ठाना है। जयसिंहने मारवाड़से सहायता माँगी है। सेनापति, तुम सेना लेकर जयसिंहकी सहायता करने जाओ।

दुर्गा०—जो आज्ञा महाराज। कल सबेरे ही जाऊँगा।—कासिम कहाँ है?

शिव०—वह बीमार है। नहीं तो वह सबसे पहले आकर स्वामीके चरणोंमें प्रणाम करता।

दुर्गा०—बीमार है ? क्या बीमारी है ? कहाँ है वह ?

शिव०—भीतर कोठरीमें सो रहा है। विशेष कुछ नहीं, ज्वर—साधारण ज्वर है।

दुर्गा०—चलो—उसे देख आवें—　　(सब जाते हैं।)

चौथा दृश्य

स्थानः—दक्खिनमें मुगलोंका पड़ाव

समय—प्रात:काल

[औरंगज़ेब और दिलेरखाँ खड़े हुए बातें कर रहे हैं।]

और०—दिलेरखाँ, तो अकबर ईरान चला गया ?

दिलेर०—हाँ जहाँपनाह, एक अँगरेज़के जहाजपर चढ़कर धुआँ उड़ाते हुए उसी तरफ चले गये।—वहाँसे—सुन पड़ता है—मक्के शरीफको जायँगे।

औरंग०—(लंबी साँस लेकर) उसकी नसीहत और तालीमके लिए इतनी मेहनत, कोशिश और खर्च सब बेकार हुआ !

दिलेर०—नहीं जनाब, नसीहत और तालीमका तो नतीजा बहुत अच्छा देख पड़ा। अगर ऐसा न होता, तो शाहज़ादेको पछतावा न होता।

औरंग०—मैं भी मक्के शरीफको जाऊँगा। मैं अपनी ज़िन्दगीके सब काम कर चुका। सिर्फ एक काम बाकी है। रजियाको दुश्मनोंके हाथसे निकालना। तुम अगर दुर्गादासको छोड़ न देते, तो शायद मक्का जानेके पहले यह काम भी मैं कर जा सकता।

दिलेर०—दुर्गादासको डर दिखाकर ? नहीं जहाँपनाह, यह नहीं हो सकता था। डर किसे कहते हैं, सो वह बहादुर जानता ही नहीं।

उस रातको कामबख़्शने जब दुर्गादासके सिरपर तलवार तानी थी, तब दुर्गादास इस तरह छाती फुलाकर खड़ा हुआ था जनाब, कि मैं दंग रह गया। उस वक्त जो मैंने देखा उसे मैं कभी नहीं भूल सकता। एकाएक उसका सिर पहाड़की चोटीकी तरह ऊँचा और सीधा हो गया। उसकी छाती आसमानकी तरह चौड़ी हो गई।—उस बहादुरको और कभी मैंने इतना ऊँचा, इतना चौड़ा नहीं देखा जनाब!

औरंग०—हाँ दिलेरखाँ, दुर्गादास बेशक एक बहादुर और ऊँचे ख़यालातका आदमी है। लेकिन—

दिलेर०—जहाँपनाह, मैं देखता हूँ कि फर्ज़के लिए राजपूत मरनेको नहीं डरते। सिर्फ इतना ही नहीं है— वे फर्ज़के लिए मरनेमें एक तरहका फख्र समझते हैं। और उन राजपूतोंमें दुर्गादास सबसे बढ़कर है।

औरंग०—मैं इस बातको मानता हूँ दिलेरखाँ,— तो फिर रजिया दुश्मनोंके हाथसे नहीं निकल सकती?

दिलेर०—यह बात नहीं है जहाँपनाह, मैं इस कामको कर सकता हूँ, अगर हुजूर इस मामलेमें मुझे पूरा पूरा अख़्तियार दें।

औरंग०—कैसे यह काम करोगे?

दिलेर०—जहाँपनाह, मैं जानता हूँ कि राजपूत जातिसे—खास कर इस दुर्गादाससे—किस तरह काम निकाला जा सकता है। उसकी इज्जत कीजिए, उसपर यक़ीन लाइए, तो वह फूलसे भी बढ़कर मुलायम है। उसे डर दिखाते जाइए—धमकाइए—तो वह लोहेसे भी कड़ा है।

औरंग०—अच्छी बात है। मैं तुमको इस बारेमें पूरे अख़्तियारात देता हूँ। मेरा दिमाग़ सही नहीं है। मैंने समझकी गल्तीसे मोअज्जमको दुश्मन बना लिया, आज़मको लालची बना डाला, अकबरको बाग़ी और कामबख़्शको शैतान बना दिया। लेकिन तो भी समझमें कहाँपर गल्ती है, सो कुछ समझमें नहीं आता।

दिलेर०—जनाब, अगर यही मालूम हो जाय कि गल्ती कहाँपर है, तो फिर गल्ती रहे ही क्यों ?

[काबलेसखाँका प्रवेश]

औरंग०—क्या है काबलेसखाँ ?

काबलेस०—हुजूर, संभाजीको गधेकी पीठपर चढ़ाकर शहरभरमें घुमाया जा चुका। काफिर रास्तेमें चिल्ला-चिल्लाकर कहता था कि 'मुझे कोई मार डालो।' लेकिन किसीकी हिम्मत नहीं पड़ी। उसे अब यहाँ ले आऊँ खुदावन्द ?

औरंग०—ले आओ।

काबलेस०—मेरा इनाम खुदावन्द ?

औरंग०—दूँगा काबलेस, दूँगा, खूब इनाम दूँगा।

(सलाम करके काबलेसखाँका प्रस्थान)

औरंग०—दिलेरखाँ, अब मुझे जिन्दगीसे नफरत-सी हो गई है। मेरी खुशी जाती रही है। मेरी कमर जैसे टूट गई है। (थोड़ी देर चुप रहकर) जिसे कभी सोचा न था—मेरी बेगम—हिंदोस्तानके बादशाहकी बेगम—उसे मैंने क्या नहीं दिया था !—उसका यह हाल ! दिलेरखाँ, मैंने कभी—ख्वाबमें भी—यह नहीं सोचा था !

दिलेर०—जहाँपनाह, मैं बराबर यही देखता आ रहा हूँ कि आदमी जिस बातको नहीं सोचता वही सबसे आगे आती है।

[पिंजड़ेमें बंद संभाजीको साथ लिये आज़म, काबलेसखाँ और सिपाहियोंका प्रवेश]

औरंग०—यही मराठा बहादुर है ? क्यों महाराज कुरानको और बुरा कहोगे ? मसजिदोंको तोड़ोगे और नापाक करोगे ? मुल्लाओंकी बेइज्जती करोगे ?—जवाब क्यों नहीं देते ?

काबलेस०—हुजूर, यह जवाब किस तरह दे ? कुरानको यह बुरा कहता था, इस लिए इसकी जबान काट ली गई है।

औरंग०—मराठे बहादुर, अब भी बता, कुरान-कल्मा पढ़ेगा ? अगर अब भी यह मंजूर कर, तो मैं तेरी जान बख़्श सकता हूँ।

(संभाजी औरंगज़ेबके उद्देश्यसे पिंजड़ेके घेरेमें लात मारते हैं।)

काबलेस०—हुजूर, अबकी लातमें पिंजड़ा टूट जायगा। जहाँ-पनाह, इसके कत्लका हुक्म जल्दी दीजिए। नहीं तो—

औरंग०—जाओ, अभी इसका कटा हुआ सिर मेरे सामने पेश करो।

(संभाजीको लेकर आज़म, काबलेसखाँ और सिपाहियोंका प्रस्थान)

औरंग०—दिलेरखाँ, सन्नाटेमें क्यों आ गये ?—बोलते क्यों नहीं ?

दिलेर०—इसके ऊपर अब मुझे कुछ नहीं कहना है। बहादुरके साथ बहादुरको शायद ऐसा ही बर्ताव करना चाहिए !

औरंग०—संभाजी अगर कल्मा पढ़नेपर राजी हो जाता, तो मैं उसको माफ कर देता।

दिलेर०—अगर संभाजी इस वक्त मौतके डरसे कल्मा पढ़नेपर राजी हो जाते, तो मैं उनसे नफरत करता।—जनाब, आप क्या यह चाहते हैं कि कोई अपनी समझ और यकीनके खिलाफ दीन-इसलामको माने ?

औरंग०—दिलेरखाँ, इस दीन-इसलामको फैलानेके लिए ही मैं इस तख्तपर बैठा हूँ। इसीके लिए बापको कैदखानेमें बंद किया, भाईका खून अपने सिर लिया। खुदा जानता है—

दिलेर०—यह मैं जानता हूँ। जनाब, मैं आपको मज़हबके बारेमें कट्टर मुसलमान समझकर ही अबतक आपका साथ दे रहा हूँ। अगर आपको मज़हबकी आड़में मनमानी करनेवाला मक्कार समझता, तो अबसे बहुत दिन पहले बन्दा बन्दगी करके चल देता।—लेकिन बादशाह सलामत, कहीं सीनेजोरीसे मज़हब बढ़ सकता है ? तलवारकी

धारसे दीनपर यकीन दिलाया जा सकता है ? ठोकरें मारकर रिआया माफिक की जा सकती है ? जहाँपनाह, मैं फिर कहता हूँ—इस रास्तेसे लौटिए। अब भी हिन्दुओंकी मुखालफत छोड़िए। हिन्दू और मुसलमानोंके दिल मिलें, मन्दिरों और मसजिदोंमें आज़ादीके साथ ~~ओम परमेश्वर और खुदाका नाम लें~~। एक साथ आसमानमें अजाँ और शंखकी आवाज गूँज उठे। हिन्दू और मुसलमान एक दफा कौमी दुश्मनी भूलकर—एक दूसरेको भाई समझकर—गले लग जावें। उसी दिन हिन्दोस्तानमें एक छोरसे दूसरे छोरतक ऐसी बादशाहत कायम हो जायगी, जैसी दुनियाभरमें कभी किसीने नहीं देखी।

औरंग०—हिन्दू और मुसलमान एक होंगे दिलेरखाँ ?

दिलेर०—क्यों न होंगे हुजूर ? वे इतने दिनोंसे एक ही आसमानके नीचे रहते हैं, एक ही ज़मीनका पैदा हुआ नाज वगैरह खाते हैं, एक ही जमीनका पानी पीते है, एक ही हवा उनके बदनमें लगती है।—अब भी क्या दोनोंके प्राण—दोनोंकी रूह—एक नहीं हुई ? मैं चाहता हूँ कि हिन्दू और मुसलमान दोनों मज़हब, कौम और रस्मरवाजके फर्कको भूलकर, घुटने टेककर, हाथ जोड़कर, एतकाद और भक्तिके साथ, इस हिन्दोस्तानकी हरी-भरी धरतीके जयजयकारसे आसमानको गुँजा देवें !—उनके दिलोंमें यह ख्याल पैदा हो कि यह हिन्दोस्तान हमारी मा है, और हम हिन्दू-मुसलमान एक माके दो लड़के—भाई-भाई—हैं !

औरंग०—दिलेरखाँ, तुम सपना देख रहे हो।

दिलेरखाँ—मुझे माफ करें जहाँपनाह।—शायद मैं सपना ही देख रहा था। लेकिन बड़े सुखका सपना था।—

औरंग०—(स्वगत) यही अगर होता। यही अगर हो सकता।—नहीं, बहुत ज्यादह देर हो गई। अब इस उम्रमें एक और नये मनसूबेके

लेकर कामके मैदानमें उतरना नहीं बन सकता ! (प्रकट) दिलेरखाँ, मैं क्या कर रहा हूँ, सो खुद मेरी ही समझमें नहीं आता। मैं 'कल' की तरह काम किये चला जा रहा हूँ। सोचने नहीं पाता। मेरी आँखोंके आगे अँधेरा-सा छाया हुआ है। सिर चकरा रहा है। दिलेरखाँ, अब मैं वह औरंगज़ेब नहीं रहा, मैं उसका सिर्फ ढाँचा हूँ।

दिलेर०—अभी कुछ देर है जनाब, अभी उस ढाँचेपर गोश्त लटक रहा है; गिर नहीं पड़ा। पर हाँ, वैसा होनेमें बहुत देर भी नहीं है।

[इसी समय काबलेसखाँ एक चाँदीकी तश्तरीमें संभाजीका कटा हुआ सिर लाकर बादशाहके पैरोंके पास रखता है। साथमें रुधिरसे तर आज़म और सिपाही हैं)

औरंग०—संभाजीका सिर है !—जाओ, ले जाओ।

दिलेर०—दाराके खूनसे जो सल्तनत शुरू हुई थी, वह इस बहादुरके खूनसे खतम हुई समझो ! (प्रस्थान)

काबलेस०—जहाँपनाह, मेरा इनाम ?

औरंग०—तेरा इनाम ? अरे कौन—(पहरेदारोंसे) इसे बाँधो।

काबलेस०—एँ—मुझे—

(पहरेदार सिपाही काबलेसखाँको बाँधते हैं।)

औरंग०—आजम, इसे बाहर ले जाओ—इसका सिर काटकर ले आओ। काबलेसखाँ, यह जरूर है कि हम लोगोंको अक्सर तुझ जैसे दग़ाबाज़ोंकी मदद लेनेके लिए लाचार होना पड़ता है। लेकिन दिलसे मैं तुझ जैसे लोगोंसे नफरत ही करता हूँ—जा, जहाँ तेरा मालिक संभाजी गया है।

काबलेस०—जहाँपनाह !

औरंग०—जाओ, ले जाओ। (प्रस्थान)

आज़म०—चल कुत्ते !

काबलेस०—दोहाई है शाहज़ादा साहब, मुझे जानसे न मारिए। मैं आपका गुलाम होकर रहूँगा—आपका—

आज़म—चल नमकहराम—(लात मारता है।)

काबलेस०—मारिए—जूते मारिए—लातें मारिए—और फिर मारकर निकाल दीजिए—पर जानसे न मारिए—दोहाई है !

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—जोधपुरका महल

समय—रात्रि

(अजितसिंह और श्यामसिंह)

श्याम०—तो महाराजने राणाकी भतीजीसे ब्याह किया है ?

अजित०—हाँ राजा साहब। सेनापति दुर्गादास हालमें उदयपुर गये थे। वही वहाँसे इस ब्याहका प्रस्ताव लेकर आये। मैंने उसे स्वीकार कर लिया।

श्याम०—महाराज, यह बड़े सौभाग्यकी बात है कि आज फिरसे मेवाड़ और मारवाड़के घराने मिल गये। मैंने सुना है, राजसिंहकी लड़की बड़ी सुन्दर है।

अजित०—लेकिन कठपुतली है। उसकी अवस्था बहुत ही कम है।

श्याम०—इस काठकी पुतलीपर ही एक दिन खून-मांस चढ़ आवेगा। उसे कुछ सिखाना या समझाना न होगा महाराज !

अजित०—वह बात करना भी नहीं जानती।

श्याम०—जानेगी महाराज, समयपर सब सीख जायगी। औरतें तोतेकी तरह होती हैं—सीताराम पढ़ाइए, उसे भी पढ़ेंगी; राधाकृष्ण

पढ़ाइए उसे भी पढेगी ।—महाराज, मैंने सुना है कि राणा जयसिंहने अपनी छोटी रानीको छोड़ दिया। क्या यह सच है ?

अजित०—हाँ राजा साहब, उन्होंने छोटी रानीका महीना बाँध दिया है ।

(दुर्गादासका प्रवेश)

श्याम०—दुर्गादास, शाहज़ादी कहाँ है ?

दुर्गा०—मैंने उसे सेनापति शुजायतखाँको सौंप दिया । आपको सौंपनेकी अपेक्षा उन्हें सौंपना ही मैंने अच्छा समझा ।

श्याम०—क्या मुझपर आपको विश्वास नहीं हुआ ?

दुर्गा०—महाराज, सच तो यही है कि मैं आपपर पूरी तौरसे विश्वास नहीं कर सका । किन्तु बात एक ही है । बादशाहके पास शाहज़ादीको आप न ले गये, शुजायतखाँ ही ले गये ।

श्याम०—हाँ—हाँ—सो अच्छा ही किया । शाहज़ादीको वे ले गये तो भी वही बात हुई, और मैं ले जाता तो वही बात होती ।

अजित०—शाहज़ादी ? कौन शाहज़ादी दुर्गादास ?

दुर्गा०—अकबरशाहकी लड़की रजिया । उसके बदलेमें मैंने मारवाड़गज्यके लिए बादशाहसे युद्ध किये बिना ही तीन नगर प्राप्त किये हैं ।

अजित०—क्या दुर्गादास ! तुम क्या यह कहना चाहते हो दुर्गादास, कि तुमने—तुमने रजियाको मुगलोंके हाथ लौटा दिया ?

दुर्गा०—हाँ महाराज, उसे मैंने लौटा दिया ।

अजित०—(दमभर चुप रहकर) रजियाको लौटा देनेका तुम्हें अधिकार क्या था सेनापति ? राजा मैं हूँ, मेरी, आज्ञा लिये बिना—

श्याम०—मैंने भी सेनापतिसे यही कहा था महाराज, कि महाराजकी अनुमति लिये बिना—

अजित०—तो बीकानेर-नरेश, तुम भी इस कुचक्रमें हो ?

दुर्गा०—आज्ञा मैंने इसलिए नहीं ली महाराज कि वह माँगनेसे नहीं मिलती।—और अकबर और उनके परिवारने मेरा आश्रय लिया था; महाराजका आश्रय नहीं लिया था।

अजित०—तुम्हारी इतनी मजाल दुर्गादास !—तुमने सोचा—(क्रोधके मारे गला रुँध जाता है।)

दुर्गा०—सुनिए महाराज, स्पष्ट ही कहता हूँ। मुझे मालूम हुआ कि आप शाहज़ादीको चाहने लगे हैं। जिस दिन मैं दक्खिनसे लौटकर यहाँ आया था, उसी दिन मुकुन्ददासने यह बात मुझसे कही थी। उसके बाद मैंने खुद भी देखा कि यह बात सच है। यह प्रेम किसीके लिए अच्छा न था। क्योंकि आपका शाहज़ादीके साथ ब्याह नहीं हो सकता। इसीसे मैंने उदयपुरमें आपके ब्याहका प्रस्ताव किया। वहीं इन बीकानेर-नरेशने शाहज़ादीको लौटा देनेका प्रस्ताव किया और मैं उसपर राजी हो गया।

अजित०—राजी हो गये ? जान पड़ता है, खूब रिश्वत ली है सेनापति !—

दुर्गा०—रिश्वत महाराज ? अगर रिश्वत लेता—नहीं, क्षमा कीजिएगा महाराज, मैं अनुचित बात कहनेवाला था।

अजित०—क्षमा ? दुर्गादास, इस रिश्वत लेनेके अपराधमें मैं तुमको सदाके लिए मारवाड़से निकल जानेकी आज्ञा देता हूँ।

दुर्गा०—जो आज्ञा महाराज, प्रणाम। (प्रस्थान)

अजित०—षड्यन्त्र—षड्यन्त्र—एक भारी षड्यन्त्र रचा गया है।

श्याम०—महाराज, पहले ही कह चुका हूँ कि मैं इस षड्यन्त्रमें इस साजिशमें नहीं हूँ।

अजित०—दूर हो।—(लात मारकर श्यामसिंहको निकाल देते हैं)—रजिया ! तो तुम गईं, सदाके लिए मेरे हाथसे गईं ! और तुम्हारे कारण मैंने दुर्गादासको भी हाथसे खोया ! (बेचैनीके साथ टहलता)

(तेजीके साथ कासिमका प्रवेश)

कासिम—राजा, महाराज दुर्गादास कहाँ हैं ?

अजित०—इस राज्यको छोड़कर चले गये।

कासिम—वे खुद चले गये, या तुमने उनको निकाल दिया ?—श्यामसिंहसे जो मैंने सुना वह सच है ?

अजित०—हाँ, मैंने उनको देशनिकालेका दण्ड दिया है।

कासिम—यह तो मालूम हुआ, लेकिन क्यों दिया ?

अजित०—रिश्वत—घूस लेनेके कारण।

कासिम—(क्रोधसे काँपते हुए स्वरमें) घूस ! रिश्वत !—महाराज दुर्गादासने घूस ली है !—भला रे भला ! तूने यह बात कही ! दुर्गादासने घूस ली है ! दुर्गादास अगर लेते, तो क्या तेरे ऐसे एक महाराज न बन जाते ? वे चाहते तो तुझे पैरोंसे ठेलकर जोधपुरके सिंहासनपर राजा होकर बैठ सकते थे। दुर्गादास घूस लेंगे ? हाँ रे नमकहराम !—एहसानफरामोश ! जिन्होंने अपना जी होमकर इतने दिन तक तेरी हिफाजत की—जान बचाई—पचीस बरसतक जो मुल्कके लिए लड़ते रहे, उन्हींको बुढ़ापेमें तूने निकाल दिया ? अब वह पराये दरवाजेपर भीख माँगकर—नौकरी करके—खायँगे, यही तेरा धरम था राजा ? (गला भर आता है।)

अजित०—काका—

कासिम—(आवेशमें आकर) खबरदार, अब मुझे काका कहकर न पुकारना। मैं ऐसे एहसानफरामोशका काका नहीं बनना चाहता—मैं अब तेरी दी हुई रोटी भी नहीं खाना चाहता। मैं भी जाऊँगी। मेहनत-मजूरी करके खाऊँगा और भीख माँगकर अपने महाराज दुर्गादासको भी खिलाऊँगा। उनकी कदर तू क्या जानेगा एहसानफरामोश ! (प्रस्थान)

(अजितका चुपचाप दूसरी तरफसे प्रस्थान)

छट्ठा दृश्य

स्थान—औरंगाबाद, शाही महल, दूसरा-मंजिल

समय—तीसरा प्रहर

(गुलनार अकेली खड़ी है। सामने बादशाहका नौकर है)

गुलनार—क्या ! बादशाहने कहा कि फुर्सत नहीं है ?

नौकर—हाँ बेगम साहब, बादशाह सलामत मक्के शरीफ जानेकी तैयारी कर रहे हैं। यहाँ आनेकी उन्हें फुर्सत नहीं है।

गुलनार—अच्छा जाओ। (नौकरका प्रस्थान) यहाँतक ! मैंने बादशाहसे कहा, मेरे लड़केको बीजापुर न भेजिए। जवाब आया, उसे जाना ही होगा। बादशाहको बुला भेजा। जवाब मिला, फुर्सत नहीं है। हूँ ! इन्सानकी जब तनज्जुली होती है, तब ऐसा ही होता है ! वक्तने पलटा खाया। लेकिन आज मैंने यह बात चुपचाप सुन ली ? तअज्जुब ! मैं क्या वही गुलनार हूँ ? यकीन नहीं आता। देखूँ (आईनेके पास जाकर) यह क्या ! सचमुच मैं अब वह गुलनार नहीं रही। आँखें गढ़ेमें चली गई हैं, गाल बैठ गये हैं, बाल पक गये हैं। अब मैं वह गुलनार नहीं हूँ !—मैं कौन हूँ ? (चिल्लाकर) मैं कौन हूँ ?

[रजियाका प्रवेश]

रजिया—बेगम साहब !

गुलनार—कौन ? रजिया, क्या कहकर पुकारा ? बेगम साहब ? तो मैं बादशाहकी बेगम हूँ ? तो मैं वही गुलनार हूँ ?

रजिया—अम्मीजान—

गुलनार—रजिया, मुझे अच्छी तरह देख और सच सच कह—मैं वही गुलनार हूँ कि नहीं ?

रजिया—अम्मीजान, मालूम नहीं, तुम वही गुलनार हो या नहीं। लेकिन तुम मेरी वह अम्मीजान जरूर हो।

गुलनार—तू सच कहती है रजिया ? मैं पहचानी जाती हूँ ? सच कह, पहचानी जाती हूँ ? एक दिन वह था, जब तूने मुझे हिन्दोस्तानके बादशाहकी बेगम गुलनार देखा था—हिन्दोस्तानका बादशाह जिसकी एक प्यारकी नज़रके लिए मुन्तज़िर रहता था; सैकड़ों राजे जिसकी त्यौरीपर बल पड़नेको ख़ौफके साथ दूरसे देखा करते थे, हाथमें नंगी तलवार लिए लाखों सिपाही जिसकी उँगलीके इशारेपर मरने-मारनेके लिए तैयार रहते थे। और आज मैं इस हालतमें हूँ !—बादशाह नफरतकी निगाहसे देखते हैं, फर्मांवरदार लोग बात करनेके रवादार नहीं हैं, सारी दुनियाने छोड़ दिया है। क्या मैं वही गुलनार हूँ ? अच्छी तरह देखकर बतला।

रजिया—अम्मीजान, तुम मेरी वही अम्मीजान हो। दुनिया तुमको भले ही छोड़ दे, लेकिन मैं तुमको नहीं छोड़ सकती।

गुलनार—क्यों रजिया, मैंने तेरे साथ ऐसा क्या सलूक किया है ?

रजिया—तुमने कुछ सलूक नहीं किया, यह सच है। लेकिन तो भी मैं तुमको नहीं छोड़ सकती। क्योंकि हम दोनों एक ही तरहके दुखसे दुखी हैं। मैं भी बदनसीब हूँ।

(बाँदीका प्रवेश)

बाँदी—शाहज़ादी, चलिए।

रजिया—ठहर जा, थोड़ी देरमें चलती हूँ।

बाँदी—नहीं शाहज़ादी, बादशाहका हुक्म नहीं है।

गुलनार—क्या हुक्म नहीं है बांदी ?

बाँदी—शाहज़ादीको यहाँ आने देनेका। (रजियासे) चलिए।

(रजिया आँखोंमें आँसू भरे हुए गुलनारकी तरफ देखती है।)

गुलनार०—(रजियासे) जाओ।—(रजियाका प्रस्थान) मैं

आज इतनी नाचीज हो गई हूँ ! अपनी पोतीसे बात करना भी मेरे लिए मना है ! एक बाँदी भी लाल-पीली आँखें दिखाकर चली जाती है ! नौकर-चाकरोंकी भी नफरत बर्दाश्त करके गुलनार इस शाहीमहलके कौनेमें नहीं पड़ी रह सकती ! मल्का होकर शाही महलमें आई थी और उसी हैसियतमें यहाँसे जाऊँगी ।

[नीचे सड़कपर कुछ फकीर आकर गाते हैं ।]

गीत

ज़िन्दगी तो देख ली हसरतकी कसरत है अजब ।
ग़र हो हिम्मत कुछ तो चल तू मौतको भी देख अब ॥
यह भरा लहरा रहा गहरा समुद्र अपार है ।
तैरते हैं सब पड़े उसमें, मगर है खुश्क लब ॥
हाथ पैर हजार मारें, पार पर मिलना नहीं ।
डूबना मँझधारमें होगा थकेंगे अंग जब ॥
इसके ऊपर उठ रही लहरें गरजतीं बेगसे ।
और नीचे है अगम पानी परेशानी अजब ॥
इतने दिन तैरा किया लहरोंमें ऊपर तू अरे ।
देख नीचे डूबकर कितना कहाँ पानी है अब ॥

गुलनार—ठीक है । आज गोता लगाकर देखूँ कि नीचे कितना गहरा पानी है । बस, यही ठीक है । डर काहेका ? यही अच्छा है । आज खुदकुशी करूंगी ।

[कामबख्शका प्रवेश]

कामबख़्श—अम्मी, मैं बीजापुर जाता हूँ । अब्बाजानका हुक्म है ।

गुलनार—हाँ, सुना है । जब तुम्हारे अब्बाजानका हुक्म है, तब मैं रोकनेवाली कौन हूँ ! जाओ । (कामबख्श गुलनारके पैर छूता है, गुलनार सिर्फ सिर झुका लेती है) कामबख्श, बेटा, बस यही मेरी-तेरी आखिरी मुलाकात है !

कामबख्श—क्यों अम्मीजान ?

गुलनार—क्यों ? इस लिए कि मैं मरूँगी—मैं मरूँगी—मैं खुदकुशी करूँगी !

काम०—यह क्या कह रही हो अम्मीजान ? मैं जानता हूँ कि तुम्हारी तबियत कुछ दिनसे बहुत खराब हो रही है। लेकिन—

गुलनार—क्यों मरूँगी ? जानना चाहते हो ? तो सुनो। जबतक मैं बादशाहपर हुकूमत करती थी—तबतक ज़िन्दा रही ! जबतक शानके साथ सिर ऊँचा किये रह सकी—ज़िन्दा रही !—आज बादशाहकी नफरत, नौकरोंकी बदमिज़ाजी, लड़के-पोतोंका तरस और दिलकी बेकरारी लेकर गुलनार इस दुनियामें नहीं रहना चाहती।

काम०—फिर वह दिन अल्लाह दिखावेगा अम्मीजान, अब्बाजानसे माफी माँग लो।

गुलनार—क्या कामबक्श ? माफी ? मैं माफी माँगूगी ?—तू मेरा लड़का है ?—कामबख्श, सूरज जिस शानसे निकलता है उसी शानसे डूबता है। जाओ—लेकिन लौटकर अपनी अम्मीको न देखोगे।

काम०—अम्मीजान—

गुलनार—चुप ! बस अब कुछ न कहना। मैंने पक्का इरादा कर लिया है। जाओ, बस हम दोनोंकी यही आखिरी मुलाकात है।—(सिर झुकाकर धीरे धीरे कामबख्शका प्रस्थान) सूरज डूबनेमें अब ज़्यादह देर नहीं है। बाँदी !—नहीं, कोई नहीं है। एक बाँदी भी आज मेरे हुक्मके इन्तज़ारमें यहाँ मौजूद नहीं ! आज मैं बाँदियोंसे भी बदतर हो गई हूँ !—गया, सब गया—मेरी शान, इज्जत और दबदबा सब गया। मैं भी जाती हूँ। (प्रस्थान)

औरंग०—कहाँ है बेगम ?

बाँदी—मालूम नहीं जहाँपनाह, यहीं तो अभी थीं। जान पड़ता है, भीतर गई।

औरंग०—जा, खबर। (बाँदीका प्रस्थान) दुर्गादास! मैं तुमसे जंगमें हार चुका हूँ, लेकिन यह हार उससे कहीं बढ़कर है। तुमने गुलनार ऐसी हसीन औरतको मुट्ठीमें पाकर भी छोड़ दिया—बेशक, तुम एक महात्मा हो! दिलेरखाँके कहनेसे और तुम्हारी इज्जत करनेके खयालसे, आज मैं गुलनारको माफ़ कर दूँगा। सच बात है, दिलेरखाँका कहना ठीक है—मक्के शरीफ़को जानेके वक्त एक बिगड़े-दिल ढीठ औरतपर गुस्सा रखना मुनासिब नहीं।

(खूब शृंगार किये हुए गुलनारका प्रवेश)

गुलनार—कौन ? क्या बादशाह ? इतनी मेहरबानी ?

औरंग०—मल्का !

गुलनार—चुप। अब मैं मल्का या बेगम नहीं रही। जब तक हुक्म चलाती रही, तब तक मल्का थी। आज मैं मल्का नहीं हूँ, सिर्फ गुलनार हूँ।—क्या कहना है, कहो।

औरंग०—यह क्या गुलनार! इसी बीचमें इतनी तबदीली! यह क्या! तुम तो पहचानी नहीं जातीं!

गुलनार—बादशाह, मेरे उरूजके साथ मेरा हुस्न भी चला गया—मिट्टीमें मिल गया। अब मेरे पास किस इरादेसे आये हो? बोलो। ज़्यादह वक्त नहीं है। मैं मरने जा रही हूँ। हैं ज़हरका प्याला पी चुकी हूँ!

औरंग०—यह क्या! जहर पी लिया है गुलनार? किस लिए?

गुलनार—किस लिए ? पूछते हो ? बुड्ढे लटे हुए औरंगज़ेब, तुम क्या समझे थे कि मैं हेच होकर तुम्हारी नफरतको बर्दाश्त करनेके लिए ज़िन्दा रहूँगी ? तुमने क्या सोचा था कि मैं तुमसे रहमकी भीख माँगकर ज़िन्दा रहूँगी ?—इस सूरजकी तरफ देखो, उसके बाद मेरी तरफ देखो, फिर बताओ कि हम दोनों भाई-बहन जान पड़ते हैं या नहीं ? मैं भी मल्का होकर आकर चढ़ी थी, और आज गरूब होने जा रही हूँ ।

औरंग०—गुलनार, मैं इस वक्त तुमको माफ करनेके लिए आया हूँ । मैंने तुमसे जो कुछ ले लिया था, वह फिर देने आया हूँ ।

गुलनार—माफी ?

औरंग०—हाँ, अब मैं तुमको प्यार नहीं कर सकता । गुलनार, तुम नहीं जानतीं कि तुमने मुझको कैसी चोट पहुँचाई है ! दमभरमें तुमने मेरी मोहब्बत, एतबार और उम्मीदोंको देददींके साथ टुकड़े टुकड़े कर डाला है । जवानीमें इन चीजोंके टूटनेपर जोड़ लग सकता है; लेकिन बुढ़ापेमें जो टूटता है वह फिर जुड़ नहीं सकता । मेरा सब मिट गया । मैं भी मरने जा रहा हूँ । इस वक्त मैं तुमसे मोहब्बत नहीं कर सकता । वह ताकत मुझमें नहीं रही । लेकिन हाँ, माफ कर सकता हूँ ।

गुलनार—माफ !—बादशाह, तुम मुझे माफ करोगे ?

औरंग०—नीच कौमके लोग बदमाश औरतको मारते-पीटते हैं, या मार ही डालते हैं । मामूली पढ़े-लिखे लोग उसे छोड़ देते हैं । बड़े लोग—ऊँचे दर्ज़ेके आदमी—उसे माफ कर देते हैं ।

गुलनार—(व्यंगके स्वरमें) बेशक तुम बहुत ही ऊँचे दर्ज़ेके आदमी हो ! लेकिन बादशाह, गुलनारने न कभी किसीको माफ किया और न वह किसीसे माफी चाहती है !

औरंग०—तुम गलत समझी हो गुलनार, मैं ऊँचे दर्ज़ेका आदमी नहीं हूँ। ऊँचे दर्ज़ेका आदमी दिलेरखाँ है। मैं तो इस वक्त 'कल' की तरह सब काम कर रहा हूँ। दिलेरखाँने मुझसे तुमको माफ कर देनेके लिए कहा है। इसीसे मैं उसका कहना—

गुलनार—दिलेरखाँके कहनेसे ? जाओ बादशाह, तुम्हारी माफी मैं नहीं चाहती। मैं दोज़खकी आगमें जलने जा रही हूँ। औरत हूँ।—मेरा सिर घूम रहा है, अब बोला नहीं जाता, मैं मरती हूँ। मुझे कुछ दुख नहीं है औरंगज़ेब, मुझे अपने गिरनेका दुख नहीं है। ऊपर चढ़ी थी—गिर पड़ी। जो लोग नीचे पड़े रहते हैं, वे गिर नहीं सकते। कुछ ग़म नहीं। अगर औरत होकर पैदा हुई थी, तो मर्दको अपनी मुट्ठीमें रक्खा। अगर मल्का हुई थी, तो सल्तनतपर हुकूमत की। अगर किसीको चाहा भी, तो उसे ही अपनी उल्फत बख्शी, उससे मोहब्बतकी भीख नहीं माँगी।—कुछ गम नहीं। एक दिन तो मरना होगा। फिर हाथ-पैर चलते ही क्यों न मर जाऊँ !—लो, वह सूरज डूब गया—मैं भी जाती हूँ।

(गिर पड़ती है।)

औरंग०—जाओ गुलनार, तुम अपने गुनाहोंपर पछताते हुए नहीं मर सकीं। शायद मौतके उस किनारे पहुँचनेपर तुम्हारा पछताना शुरू होगा। लेकिन मैं तो मरनेसे पहले ही अपने आमालोंपर पछताने लगा हूँ।

सातवाँ दृश्य

स्थान—आगरेका महल, नीचे यमुना बह रही है
समय—सायंकाल

[दिलेरखाँ और एक बादशाही नौकर]

नौकर—बादशाहकी मौत हो गई ?

दिलेर०—हाँ मुबारक, वह मौत बहुत ही दर्दनाक थी। देखकर तरस आता था। उनके पास न कोई शाहज़ादा था और न बेगम ही थीं।—अकेला मैं था। बड़ी ही दर्दनाक मौत थी।

नौकर—वे मक्के शरीफ जानेवाले थे न ?

दिलेर०—हाँ। लेकिन जा नहीं सके। दौलताबादमें ही मर गये। उस अफसोस करने लायक मौतको मैं कभी न भूलूँगा। अपने आमालों-पर अफसोस करते हुए बादशाहका लेटे लेटे "माफ करो मराठे, माफ करो राजपूतो, माफ करो पठानो" कहकर चिल्लाना सुननेसे जैसे छाती फटी जाती थी। उसके बाद मरनेसे दमभर पहले भर्राई हुई टूटी-फूटी आवाज़में बादशाहने कहा—"वह सामने मौतका काला दरिया लहरा रहा है, उसीमें अपनी ज़िन्दगीकी किश्ती छोड़ता हूँ।" आखिरको "अल्ला हो" कहकर चिल्ला उठे—सब ख़तम हो गया।

नौकर—बेशक अफसोसके लायक मौत थी!—मालूम नहीं, अब कौन बादशाह होगा।

दिलेर०—मोअज्ज और आज़ममें लड़ाई छिड़ गई है। नतीजा क्या होगा सो खुदा जाने।

नौकर—आप शाहज़ादी रजियाको यहाँ ले आये हैं ?

दिलेर०—हाँ मुबारक। आज शाहज़ादीके न बाप है न मा है—कोई नहीं है। उसके बराबर दुखिया और कौन है ? यहाँ उसे एक बूढ़ी अन्नाके पास छोड़े जाता हूँ।

नौकर—आप कहाँ जायँगे ?

दिलेर०—मैं दुर्गादासका पता लगाने जाऊँगा ।

नौकर—क्यों ?

दिलेर०—मतलब है । (दोनोंका प्रस्थान)

[पागलोंकी तरह धीरे धीरे रजियाका प्रवेश]

रजिया—मैं उसे प्यार करती थी । इसमें क्या बेजा था ? किसने हमको जुदा कर दिया ? क्यों ऐसा किया ? हमारा सुख वे देख न सके । [बाँदीका प्रवेश]

बाँदी—शाहज़ादी—

रजिया—(अनसुनी करके) उस दिन पहले पहले आबू-पहाड़के गढ़में, छिटकी हुई चाँदनीमें, क्यों हमारी मुलाकात हुई !—क्यों हमारी मुलाकात हुई अजित !

बाँदी – फिर बुदबुदाने लगी । शाहज़ादी ! ओ शाहजादी !

रजिया—अजित ! अजित !—उसका नाम भी मीठा है ! अजित ।

बाँदी—शाहज़ादियोंके ढंग ही निराले होते हैं । मैं जाती हूँ । वह इस घड़ी नहीं बोलेंगी । (प्रस्थान)

रजिया—शाम हो गई । ठंडी हवा चल रही है । कोयल बोल रही है । जमना महलके नीचेसे बही चली जा रही है । आसमान कैसा साफ और कैसा नीला है ! (गाती है)—

गीत

रही न सुखकी बहार ही जब, तो फिर ये बुलबुल है गा रही क्यों
हवा भी ठंडी ये खुशबू लेकर, जला रही मुझको आ रही क्यों ?
जो तान थी गूँजती जहाँमें वो आज चुप हो रुला रही क्यों ?
न आँखमें रोशनी न जाँ है, ऐ मौत, मुझको जिला रही क्यों ?

आठवाँ दृश्य

स्थान—पेशोला झीलके किनारेका राजमहल

समय—दोपहर

[दुर्गादास अकेले खड़े हुए सामनेका दृश्य देख रहे हैं।]

दुर्गा०—(स्वगत) सब चेष्टा व्यर्थ हुई। इस जातिको खींचकर खड़ा नहीं कर सका। यह ज़रूर है कि मुगलोंका साम्राज्य नहीं रहेगा, लेकिन यह जाति भी उठकर खड़ी नहीं होगी।

(सरस्वती और जयसिंहका प्रवेश)

सर०—भीतर चलिए देव, जलपान करिए। दोपहरी ढल चुकी है।

दुर्गा०—चलता हूँ। चलिए महारानी!

जय०—यहाँ आपको किसी तरहका कष्ट तो नहीं है?

दुर्गा०—कष्ट? राणा साहबके यहाँ मैं बड़े सुखमें हूँ।

जय०—मेरे यहाँ न कहिए, सरस्वतीके यहाँ कहिए। सरस्वतीने ही आपके लिए यह जगह पसन्द कर दी है। सरस्वतीने ही यह शीशमहल आपके लिए बनवाया है। जिस दिन आपने हमारे यहाँ पधारकर एक निर्जन स्थानमें रहनेकी इच्छा प्रकट की थी, उसी दिन सरस्वती खुद यहाँ आकर सब बन्दोबस्त कर गई है। यहाँ नित्य वह अपने हाथसे आपके लिए रसोई बनाती है।

दुर्गा०—महारानीकी मुझपर असीम कृपा है।

सर०—कृपा? कृपा न कहिए देव, यह दीनका अर्घ्य है—भक्तका नैवेद्य है। राजस्थानमें ऐसा कौन है, राठौर वीर दुर्गादासके नामको सुनकर जिसकी छाती फूल न जाती हो; गर्वसे सिर ऊँचा न हो जाता हो? सौभाग्यसे, पूर्वजन्मके पुण्योंसे ऐसा देशभक्त देवता हमको अतिथिके रूपमें प्राप्त हुआ है। हम उसकी पूजा करके क्यों न अपनेको धन्य बनावें!

(दरबानका प्रवेश)

दरबान—महाराज, दरवाज़ेपर मुगल-सेनापति दिलेरखाँ खड़े हैं। वे राठौर-सेनापतिसे मिलना चाहते हैं।

दुर्गा०—दिलेरखाँ ? यह क्या ? दिलेरखाँ ?

दरबान—हाँ सरकार, यही नाम तो बतलाया है

दुर्गा०—जाओ, उन्हें बड़े आदरके साथ ले आओ। (सरस्वतीसे) रानी साहबा, अब तुम भीतर जाओ। मैं राणासाहबके साथ अभी आता हूँ। (सरस्वतीका प्रस्थान) दिलेरखाँ यहाँ ! मतलब क्या है ?

जय०—कुछ समझमें नहीं आता।

(दिलेरखाँका प्रवेश)

दिलेर०—बन्दगी बहादुर दोस्त दुर्गादास, मुझे पहचाना ?

दुर्गा०—मैं अपने जीवनदाताको किस तरह भूल सकता हूँ ! आइए, आज मैं अपनेको बहुत भाग्यशाली समझ रहा हूँ। कहिए, यहाँ किस इरादेसे आना हुआ सरदार साहब ?

दिलेर०—तीर्थ-दर्शन करनेके लिए दुर्गादास ! तुम हिन्दू लोगोंके काशी, हरिद्वार, सेतुबन्ध-रामेश्वर वगैरह तीर्थ हैं न ?—जहाँ जात्री लोग कभी कभी जाकर अपनी आकबत बनाते हैं। मैं भी मरनेसे पहले एक दफा तुम्हारे दर्शन करनेके लिए आया हूँ।

दुर्गा०—(दमभर चुप रहकर) दिलेरखाँ, मैं एक साधारण आदमी हूँ; ज़िन्दगीमें भरसक अपने कर्तव्यका पालन करता आ रहा हूँ।

दिलेर०—इस पापी जमानेमें इतना ही कितने आदमी करते हैं दुर्गादास ? जिस ज़मानेमें भाई अपने भाईका गला काटनेको तैयार है, अपने थोड़ेसे फायदेके लिए लोग कौम-भरको नुकसान पहुँचानेमें नहीं हिचकते—जिस ज़मानेमें खुशामद, जुल्म, झूठ, फरेब चारों तरफ

छाया हुआ है, उस ज़मानेमें तुम ऐसे दिलेर, साफ़दिल, नेकचलन देवताको देखनेसे रूह पाक होती है, ख़याल करके तुम्हीं बतलाओ दुर्गादास, तुम्हारे यहाँके पुराणोंमें ही ऐसे कितने लोगोंका बयान ह —जिन्होंने मालिकके लिए अपनी जानकी पर्वा न करके, मुल्कके लिए सब कुछ छोड़कर, अपनी पनाहमें आये हुएको बचानेके लिए, अपना वतन छोड़ दिया—हूरसे बढ़कर हसीन मल्काकी बेज़ा उल्फतको लात मार दी—सताई गई औरतकी जान बचानेके लिए अपनी छाती आगे कर दी—और आखिरको एक ऊँचे खानदानकी लड़कीका धरम बचानेके लिए देशनिकालेकी सजा क़बूल की।—बतलाओ ?

दुर्गा०—पुराणोंमें ढूँढ़नेकी क्या जरूरत है दिलेरखाँ ? उससे भी ऊँचे दर्जेका चरित्र अगर देखना चाहो, तो अपने चरित्रको ही आईना लेकर देखो।

दिलेर०—अपने ?

दुर्गा०—हाँ दिलेरखाँ, अपने। और भी एक आदमीसे तुमको मिलाता दिलेरखाँ, पर खेद है कि वह यहाँ नहीं है। वह तुम्हारा ही जाति-भाई वफादार कासिम है।

(अचानक कासिमका प्रवेश)

कासिम—कहाँ ! महाराज कहाँ हैं ? अरे ये तो हैं।

(जमीनपर साष्टांग प्रणाम करता है।)

दुर्गा०—यह तो कासिम ही है। आश्चर्यकी बात है कासिम तुम यहाँ खोजकर कैसे चले आये ?

कासिम—पता लगाते लगाते-आया महाराज, न जाने कितनी जगह जाकर आपकी तलाश की है !

दुर्गा०—कासिम, तुम महाराज किसे कह रहे हो ?

कासिम—जिसे हमेशासे महाराज कहता आ रहा हूँ।

दुर्गा०—नहीं कासिम, तुम्हारे और मेरे महाराज इस समय जोधपुरके महाराज अजितसिंह हैं।

कासिम—उसका नाम न लीजिए महाराज, वह नमकहराम—

दुर्गा०—कासिम, याद रक्खो, तुम किसके आगे यह बात कह रहे हो ?

कासिम०—जानता हूँ, मालिकके नामपर छातीका खून बहाने-नेवाले अपने देवताके आगे कह रहा हूँ। क्या करूँ, रहा नहीं जाता। जिसे अपने बचाकर इतना बड़ा किया, जिसके बचाव और राज-पाटके लिए अपना सब सुख खोया, जिसका रोयाँ रोयाँ आपका एहसानमन्द होना चाहिए था—उसीने आपको बुढ़ापेमें—(कण्ठावरोध)

जय०—कासिम, तो दीन-इसलाम तुम ऐसे आदमी भी बनाता है ?

दुर्गा०—सभी धर्म एक ही बात कहते हैं, एक ही महानीतिकी शिक्षा देते हैं राना ताहब ! तब भी अगर मनुष्य मनुष्यत्व न प्राप्त कर सके, तो वह धर्मका दोष नहीं है। मुसलमानोंमें काबलेसखाँ भी हैं, और दिलेरखाँ और कासिम भी हैं।

दिलेर०—और हिन्दुओंमें श्यामसिंह भी हैं और दुर्गादास भी हैं।

कासिम—हुजूर मेरी एक अर्ज़ हैं।

दुर्गा०—क्या कासिम ?

कासिम—मैंने सुना है कि हुजूर रानाकी रोटियाँ खा रहे हैं। यह तो नहीं हो सकता !

दुर्गा०—क्या नहीं हो सकता ?

कासिम—मेरे जीते-जी हुजूर, पेटके लिए दूसरेके दरवाजेपर न जायँ।

जय०—यह क्या ! तुम क्या करना चाहते हो कासिम !

कासिम—क्या करना चाहता हूँ ! सुनो राना, मैं महाराजको खिलाऊँगा।

जय०—किस तरह ?

कासिम—जिस तरह हो सकेगा। मजूरी करके खिलाऊँगा, भीख माँगकर खिलाऊँगा।

जय०—तुम क्या पागल हुए हो कासिम, तुम पावोगे कहाँ ?

कासिम—जहाँसे पाऊंगा वहाँसे खिलाऊँगा। अगर आज हमारी महारानी जीती होतीं तो दुर्गादासको पेटकी रोटियोंके लिए दूसरेके दरवाज़ेपर न जाना पड़ता। वह नहीं, लेकिन मैं तो हूँ। मैं मजूरी करके खिलाऊँगा—चूनी-भूसी जो मिलेगी वह खिलाऊँगा।—

जय०—यह भी कहीं हो सकता है ?

कासिम—नहीं हो सकता ? देखो महाराज दुर्गादास, तुमको जो पसन्द हो करो। पसन्द कर लो महाराज, रानाका दिया हुआ राजभोज खाओगे, या मेरा लाया रूखा-सूखा अन्न खाओगे ? पसन्द कर लो। रानाके पैरोंमें रहोगे, या मेरे सिरपर रहोगे ? जो चाहो पसन्द कर लो।

दुर्गा०—ठीक कहते हो कासिम, दुर्गादास तुम्हारा लाया हुआ रूखा-सूखा अन्न ही खायगा (उठकर कासिमको गलेसे लगाकर) भाई कासिम, आजसे हम दोनों भाई हुए। (दिलेरखाँसे) देखो दिलरखाँ कासिम कैसा उच्च पुरुष है !

दिलेर०—तुमने सच कहा था दुर्गादास—ठहरो, तुम दोनों महात्मा आज मेरे सामने खड़े होओ—एक दफा जी भरकर तुम दोनोंके दर्शन कर लूँ। खुदा ! तुम्हारे स्वर्गमें जो देवता सुन पड़ते हैं, वे क्या इनसे भी बड़े हैं ?

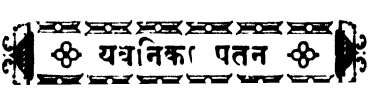

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग
बम्बई